॥ सद्योजात स्वाध्याय सुधा ॥

SHRI CHITRAPUR MATH, SHIRALI
North Kanara 581 354

ॐ

दक्षिणास्यसमारंभा शंकराचार्यमध्यमा।
अस्मदाचार्यपर्यन्ता स्मर्या गुरुपरंपरा॥
शंकरं शंकराचार्यम् केशवं बादरायणम्।
सूत्रभाष्यकृतौ वंदे भगवन्तौ पुनः पुनः॥

परिज्ञानाश्रम श्रीगुरुशंकर परिज्ञानाश्रम शंकर सद्गुरु।
केशव वामन कृष्ण पांडुरंग आनंद परिज्ञानगुरु।
सद्योजात शंकर सद्गुरु॥

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुस्साक्षात् परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः॥
ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै॥
॥ ॐ शांतिः शांतिः शांतिः॥

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय
पूर्णमेवावशिष्यते॥
॥ ॐ शांतिः शांतिः शांतिः॥

सद्योजात स्वाध्याय सुधा
Sadyojāt Swādhyāya Sudhā

श्रीगुरुभजनस्तोत्रम्

श्रीमहिषान्तकरी सूक्तम्

परम पूज्य श्रीमत् सद्योजात शङ्कराश्रम स्वामीजी
इनकी अमृतवाणी द्वारा
श्री गुरुभजनस्तोत्रम् तथा श्री दुर्गा सप्तशतीपर
दिए गए प्रवचनोंका संकलन

Published by :
Shri Chitrapur Math
Shirali, Uttara Kannada Dist.
PIN-581 354 Karnataka, INDIA

Photograph of Poojya Swamiji
by: Gourang Kodical

1st Edition, April 2005
Rathotsav

Copies : 1,000

Designed, Printed by :
Novel Creations, Bangalore
Telefax : 91-80-23346434
Mob : 94483 64346
E-mail : nandini_karanje@yahoo.co.in

अनुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ
दो शब्द	i
प्रस्तावना	iii
श्रीगुरुभजनस्तोत्रम्	1
गुरुः शरणम् (भजन)	27
श्रीमहिषान्तकरी सूक्तम्	28
पूर्णकलामयि (भजन)	78

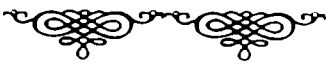

Parama Poojya Shrimat Sadyojat Shankarashram Swamiji

दो शब्द...

परम पूज्य श्रीमत् सद्योजात शङ्कराश्रम स्वामीजी के हमारे आराध्य मठाधिपति बने आठ वर्ष हुए हैं। इन स्मरणीय आठ वर्षों में पूज्य स्वामीजी ने अविराम प्रयास तथा भ्रमण करके, असंख्य प्रवचनों के माध्यम से आध्यात्मिक ज्ञान का वर्षण करके, पूरे चित्रापुर सारस्वत समाज को अपनी असीम मातृ-वात्सल्यकी छाया में समेट लिया है। क्षण-प्रतिक्षण बढ़ रहा यह भक्ति और जागृति का प्रवाह एक शांतिपूर्ण आंदोलन समान है।

पूज्य स्वामीजी के आशीर्वचन, स्वाध्याय तथा विमर्शों के श्रोतागण में अन्य प्रांतों और विविध भाषा बोलनेवाले भक्तों की बढ़ती संख्या की सुविधा के दृष्टिकोण से, आपने मातृभाषा कोंकणी के साथ-साथ अंग्रेजी तथा हिन्दी में भी अपना दिव्य संदेश देना शुरु किया। इसी लिए हमने सोचा, कि क्यों न हम इन आशीर्वचनों की शृंखला से उनके कुछ अनमोल वचनों का प्रकाशन करें ?

परम पूज्य स्वामीजी गुरुशक्ति की अपार महिमा पर निरन्तर प्रवचन देते आए हैं। अपूर्व ''गुरुभजनस्तोत्रम्'' का विस्तारित स्पष्टीकरण आपने कई सभाओं में किया है। इसका प्रकाशन इस पुस्तक में किया गया है।

देवी भगवती की उपासना, आराधना का विस्तारपूर्वक विवरण भी पूज्य स्वामीजी ने भक्ति एवं ज्ञान संपन्न वाणी मे अनेक बार किया है। दो वर्ष पहले, इस विषय में रुचि निर्माण करने के लिए आपने एक नूतन पथ अपनाया। श्री दुर्गासप्तशती जैसी देवी-माहात्म्य दर्शानेवाली प्रभावशाली स्तुतिमाला से कई विशेष स्तोत्रों को अपनी ही मधुर आवाज़ में घर-घर तक पहुँचाया, ताकि भक्तवृंद इन पवित्र एवं शक्तिप्रदायक मंत्रों का श्रवण-मनन कर सकें।

ऐसा हुआ भी, पर साथ-साथ साधकों के दिलों में इन महान स्तोत्रों, मंत्रों का गूढ़ार्थ जानने की जिज्ञासा भी जागी। इसी का समाधान करने के उद्देश्य से ''महिषान्तकरी सूक्तम्'' पर पूज्य स्वामीजी के दिल्ली, मुम्बई तथा पूणे में लिए स्वाध्यायों का संकलन इस पुस्तक में प्रस्तुत है।

आदिशक्ति मा दुर्गा एवं गुरुशक्ति के करुणावतार हमारे पूज्य स्वामीजी के अनुग्रह से श्रीमती गीताजी गोकर्ण को इस स्वाध्याय मालिका का संकलन करनेकी प्रेरणा मिली। इस पुस्तक के लिए उपयुक्त आर्थिक सहयोग उनके पति लेफ्टिनेन्ट जनरल प्रकाशजी गोकर्णने सेवारूप में दिया। संकलन का सूक्ष्म निरीक्षण-''प्रूफ रीडींग'' करने में डॉ. मालिनीजी मडिमन, शैलजाजी गांगुली, सुजाताजी हळदीपूर का योगदान रहा, तथा इसको सुन्दर आकृति दी नंदिनीजी करंजे और रेखाजी माविनकुर्वे के 'नोव्हेल क्रियेशन्स', बंगलौर ने। प्रकाशन समिती की ओर से इन सबको धन्यवाद!

रथोत्सव के मंगल मुहूर्त पर, विनम्र भक्तिभावनासहित पूज्य स्वामीजी के चरणकमलों मे इस विशेष संकलन के पुष्पगुच्छ को अर्पण करते-करते, भगवान श्री भवानीशङ्कर से यही प्रार्थना है कि हमारे प्रिय सद्गुरूके ज्ञानप्रदीप की ज्योति ठीक इसी तरह, भविष्य में भी, हम सब साधकों की आध्यात्मिक खोज के पथ का अंधकार मिटाती रहे, इसे प्रज्ज्वलित करती रहे ..

प्रकाशन समिती की ओर से

(डा. प्रकाश माविनकुर्वे)

२४ अप्रैल, २००५

रथोत्सव, चैत्र पूर्णिमा

पार्थिव संवत्सर

प्रस्तावना

॥ ॐ श्री गुरुभ्यो नमः ॥ श्री भवानीशङ्कराय नमः ॥

जब हमारे सद्गुरु, परम पूज्य सद्योजात शङ्कराश्रम स्वामीजी स्वयं स्वाध्याय करवाते हैं, तब उस से जो विलक्षण आनन्द आता है, वह अवर्णनीय है। धन्य हैं वे जिन को उन स्वाध्यायों का श्रवण करने का अवसर प्राप्त हुआ, और धन्य होंगे वे, जिन को इस स्वाध्याय मालिका के कड़ियों को पढ़कर, अध्ययन-मनन करने का अवसर प्राप्त होगा।

हम सब का यही अनुभव रहता है, कि हमारी पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ व्यवहारमें जब भी सुखद शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध ग्रहण करतीं हैं, तब हमें सुख का अनुभव होता है, और इस सुख को हम खोना नहीं चाहते। एक समय आता है, जब जीवन हमें सिखाता है, कि यह विषय-सुख अनित्य होता है। तब मन में विचार आता है, कि क्या ऐसे सुख का हमें अनुभव हो सकता है, जो नित्य हो, शाश्वत हो, जो सदा हमारा साथ दे? स्वामीजी बताते हैं कि हम कस्तूरी मृग की तरह कर रहे होतें हैं। वह आनन्द, जो हमारे अंदर ही है, जो हमारा निज-स्वरूप है, उस को हम पहचान नहीं पाते, और बाहर के विषयोंमें हम उसे खोजते फिरते हैं। इस से मिलता क्या है? मिलता है अनित्य सुख और असंतोष।

परम पूज्य सद्योजात शङ्कराश्रम स्वामीजी बताते हैं, कि उस 'नित्यानन्द' का अनुभव प्राप्त करने के लिए साधक को नियमित रूपसे विशेष प्रयास करना पड़ता है। इस प्रयास का एक मार्ग है भक्ति-मार्ग और इस के अंतर्गत आत्मतत्व की नाम-रूप से सगुण, अनिवार्य उपासना।

स्वामीजी कहते हैं कि ''इस भक्ति-मार्ग की मूलभूत, आधारभूत साधना है-जप की साधना। उसी के चारों ओर फिर हमारी साधना फैलती है स्तोत्र माध्यम से, सेवाके माध्यम से, और फिर, ध्यान के माध्यम से और गहराई में जाती है। भजन, स्तुति, पूजा इत्यादि से उपासना में ओजस्विता लानी होती है। साधना करते समय आस्तिक्य बुद्धि की आवश्यकता होती है। वेद, शास्त्र और गुरुके वचनों में विश्वास रखना होता है, जो नियम दिये गए हैं, उनका श्रद्धा और निष्ठापूर्वक पालन करना पड़ता है, पुरुषार्थ करना पड़ता है। साधना में तीव्रता लानी होती है, आग्रह छोड़ना होता है, शरणापन्न होना होता है। स्मरण करके 'ईश्वरार्पणबुध्द्या' कार्य करना, और फल के प्रति प्रसाद-बुद्धि।'' ताकि यह सब सिद्ध हो, भक्ति का होना आवश्यक है।

भक्ति में परिष्कार लाने के कई माध्यम होते हैं, जिन में एक महत्वपूर्ण माध्यम है - स्तोत्रों का श्रवण, पठन, अध्ययन और मनन। उन का अर्थानुसंधान करना और फिर उन को अंतःकरण में धारण करना। स्तोत्रों की रचना अत्यंत ही भावुक दशा में की जाती है। कई स्तोत्रोंकी शुरुआत में ही स्पष्ट किया जाता है, कि जिसमें श्रोता प्रवेश करने जा रहे हैं, वह आत्मतत्व ही है। परम पूज्य स्वामीजी कहते हैं, ''फिर उस आत्मतत्व को हम चाहे देवी के रूप में देखें, शिवतत्व के रूप में देखें, या गुरुतत्व के रूप में देखें, एक ही शक्ति है, जिस की उपासना होती है, और वह शक्ति अनुग्रह कर के हमें अपने ही आनन्द में, आत्मानन्द में मुक्त कर सकती है।''

आप देखेंगे कि इन अति भावुक स्तोत्रों का अर्थानुसंधान -सहित पाठ करते समय आप के मन में भी श्रद्धा-भक्ति को प्रेरित करनेवाले, उपासना को प्रोत्साहन देनेवाले भाव उत्पन्न होते हैं। परम पूज्य स्वामीजी बताते हैं, ''जब आप उपासना कर रहें हैं, उस समय भाव को दबाकर नहीं रखना। उसे प्रकट करना। वह भी उपासना ही है। कैसे प्रकट करना? जैसे हमारे आचार्यों ने बताया है। भाव को जागृत करके, उस को बढ़ाकर, फिर जाकर उपासना में प्रवेश होता है। बिना भाव के उपासना नहीं होती। शुष्कता को लेकर प्रगति सम्भव नहीं है। स्तोत्रों के शब्द जब हम ग्रहण करते हैं, उन का अर्थ जब हम ग्रहण करते हैं, तब भाव उत्पन्न होता है, और उन को जब हम गाते हैं, तब उस में रस आता है। उस भाव को प्रकट करना होता है। ऐसा करने से वह भाव पुष्ट होता है। भक्ति में एक परिष्कार आता है।''

परम पूज्य स्वामीजी बताते हैं कि स्तोत्रों को अच्छी तरह समझकर यदि नियमित रूप से उनका पाठ किया जाए, तो भक्ति में माधुर्य आता है, अंतःकरण शुद्ध होता है और गुरुशक्ति का अनुग्रह प्राप्त करने की हमारी पात्रता बढ़ती है।

॥ॐ नमः पार्वती पतये हर हर महादेव॥

श्रीगुरुभजनस्तोत्रम्

कलाभिः कल्पिताशेष - भुवनानन्दभोजनम्।
क्रीडन्तं त्रिपुरे नित्यं परसंविद्गुरुं भजे ॥१॥

हर्याकारं हराकारं ह्रींकारं वाम्बिकातनुम्।
हृदयेऽद्वैतमात्मानं द्योतयन्तं गुरुं भज़े ॥२॥

शिवप्रियं च रुद्राक्षं गले भाले त्रिपुण्ड्रकम्।
करे संविन्मयीं मुद्रां धारयन्तं गुरुं भजे ॥३॥

काषायवसनोपेतं करुणार्द्रविलोचनम्।
कामारिसेवनासक्तं कल्मषघ्नं गुरुं भजे ॥४॥

श्रितार्तिभेदनोद्युक्तं शर्मदं शमशोभितम् ।
श्रुत्यन्तवाक्यमनिशं श्रावयन्तं गुरुं भजे ॥५॥

संशयोच्छेदने दक्षं रक्षिताचार्यसन्ततिम्।
स्वनाथ - करपाथोज - सञ्जातं सद्गुरुं भजे ॥६॥

दीक्षितं शिष्यमोक्षार्थे साक्षात्कृतमहत्पदम्।

दक्षिणामुखदेवांशं ब्रह्मनिष्ठं गुरुं भजे ॥७॥
ग्रन्थिं भित्त्वा विनिर्यान्तं वर्षन्तं गगनेमृतम्।
कोटिविद्युत्प्रतीकाशं शक्तिपुञ्जं गुरुं भजे ॥८॥

जनयित्वा निजानन्दे रक्षित्वा मां क्षणे क्षणे।
पाययन्तं भक्तिरसं मातृभूतं गुरुं भजे ॥९॥

अनन्यभावनागम्यमभयं ज्योतिरान्तरम्।
इच्छाज्ञानक्रियामूलमात्मरूपं गुरुं भजे ॥१०॥

देशिकेश्वरपश्वादि-भेदशून्यं चिदम्बरम्।
देशकालानवच्छिन्नं निर्विकल्पं गुरुं भजे ॥११॥

मज्जन्मजन्मसाफल्यमहो जातमयत्नतः।
यदंघ्रिरेणुसंस्पर्शात् तमानन्दं गुरुं भजे ॥१२॥

श्रीगुरुद्वादशात्मानं ध्यात्वा स्तोत्रमिमं पठेत्।
साधकोत्तमः संविद् - दृष्टिसौष्ठवहेतवे।

श्रीगुरुभजनस्तोत्रम्

कर्णस्वर्णविलोलकुण्डलधराम् आपीनवक्षोरुहाम्
मुक्ताहारविभूषणां परिलसत्धम्मिलसम्मल्लिकाम्।
लीलालोलित लोचनां शशिमुखीम् आबद्ध कांचीस्रजम्
दीव्यन्तीं भुवनेश्वरीमनुदिनं वन्दामहे मातरम्॥

॥ ॐ श्री गुरुभ्यो नमः ॥ ॥श्री भवानीशङ्कराय नमः॥

सत्संग करना है, गुरुतत्त्व पर सत्संग करना है.... श्रीगुरुभजनस्तोत्र पर। इस स्तोत्र का पहले हम पाठ करेंगे, फिर उस पर चिंतन करेंगे। यह जो गुरुतत्व है, यह क्या है, इस तत्व से हमारा संपर्क कैसे होता है, और उस की उपासना कैसे की जाती है, ये सारे बिंदु इस स्तोत्र में ही आते हैं। उन पर हम चिंतन करेंगे। पहले पाठ।

गुरुतत्व का परिचय गुरुभजनस्तोत्र में आता है। भजन कैसे किया जाए, यह उपदेश भी प्राप्त होता है। इस स्तोत्र का पाठ करने का लाभ क्या है, प्रयोजन क्या है, यह अन्तिम श्लोक में दिया गया है। इस स्तोत्र में बारह श्लोक हैं, और तेरहवे श्लोकमें फल श्रुति-अर्थात् इस स्तोत्र का पाठ कैसे किया जाए, और वह करने से उस का क्या फल प्राप्त होता है, यह बताया गया है।

श्रीगुरुद्वादशात्मानं ध्यात्वा स्तोत्रमिमं पठेत्।
साधकोत्तमः संविद् -दृष्टिसौष्ठवहेतवे।

''श्रीगुरुद्वादशात्मानं ध्यात्वा स्तोत्रमिमं पठेत्''। यह स्तोत्र कैसे पढ़ना चाहिए? श्रीगुरुद्वादशात्मानं ध्यात्वा.... गुरुतत्व की बारह कलाओं का ध्यान करके इस स्तोत्र का पाठ करना चाहिए। गुरुतत्व की बारह

कलाओं को समझना है। सूर्य भी द्वादशात्मक है। यहाँ अज्ञान के अंधकार को नष्ट करनेवाला यह गुरुतत्व है। इसी लिए उस को अच्छी तरह से समझकर गुरुरूपी सूर्य का ध्यान कर के, इस स्तोत्र का पाठ करें, तो अंतःकरण शुद्ध होता है, और गुरुशक्ति का अनुग्रह प्राप्त करने की हमारी पात्रता बढ़ती है।

''साधकोत्तमः संविद्-दृष्टिसौष्ठवहेतवे''। कौन इस स्तोत्र का पाठ करे? 'साधकोत्तमः' जो साधकों में उत्तम है, वह इस स्तोत्र का पाठ करे। साधक कई प्रकार के रहते हैं। साधक शब्द का अर्थ क्या है ? वह, जो प्रयास कर रहा होता है। यदि मैं पैसे का साधक होता हूँ, तो धन मेरा साध्य रहता है। मैं बड़ी उपासना करता हूँ कि कैसे-कैसे, किन प्रकारों से मैं पैसा इकट्ठा करूँ। यहाँ विद्या का साधक हूँ, ब्रह्मविद्या का साधक हूँ, तो ''साधकोत्तमः'' कहलाता हूँ। साधकों मे उत्तम साधक, जो आत्मज्ञान की अभिलाषा रखते हुए साधना करे वह साधकोत्तमः। वह उत्तम साधक इस स्तोत्र का पाठ क्यों करे?'' संविद्-दृष्टिसौष्ठवहेतवे''। संविद्-दृष्टि, ज्ञान की दृष्टि उस की स्पष्ट हो जाए, अच्छी हो जाए इस उद्देश्य से वह इस स्तोत्र का पाठ करे। ज्ञान तो है हमें, विषय का ज्ञान तो होते ही रहता है। पर क्या आत्मतत्व का ज्ञान है ? हाँ है, कुछ अंश में है। ''मैं हूँ'' यह ज्ञान है, पर वह सीमित ज्ञान है। उस ज्ञान में भ्रम है, क्योंकि ''मैं'' कहते ही, शरीर, मन, इन से तादात्म्य होता है। अध्यास होता है, तो मैं एक व्यक्ति हूँ, यह ज्ञान होने लगता है। पर मैं शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाववान् हूँ, यह आत्मज्ञान नहीं हुआ है। तो वह दृष्टि, संविद्-दृष्टि, संवित् ज्ञान की दृष्टि की शुद्धि उस ज्ञान में लाने के लिए इस स्तोत्र का पाठ किया जाता है, और तब जीवन सार्थक हो जाता है। इस उद्देश्य को मन में रखते हुए, हम इस स्तोत्र पर चिंतन करेंगे।

कलाभिः कल्पिताशेष-भुवनानन्दभोजनम्।
क्रीडन्तं त्रिपुरे नित्यं परसंविदुरुं भजे ॥१॥

गुरु का स्मरण करते समय, मन में ऐसा दृढ़ एक संकल्प करना पड़ता है, कि यह एक प्रचंड शक्ति है, यह एक अनुग्रहात्मिका शक्ति है, जो हमें मुक्त करनेवाली है। नहीं तो फिर व्यक्ति पूजा होने लगती है, शक्ति की नहीं। उस शक्ति को हम छूना चाहते हैं, वह शक्ति जो हमें मुक्त करेगी। व्यक्ति में ही फँस गए तो, और भी बन्धन। इसी लिए इन श्लोकों में उस शक्ति का स्मरण है, जिस को हम गुरुशक्ति रूप से स्वीकारते हैं, जो अपनी कलाओं से, अपनी ही शक्ति की विभूतियोंसे, ''कलाभिः कल्पिताशेष-भुवनानन्दभोजनम्'' पहले सृष्टि करती है, उस सृष्टि को धारण करती है, और फिर स्वाहा, पचा लेती है, अपने में ही। सृष्टि, स्थिति, संहार करनेवाली जो प्रचंड शक्ति है, उसी शक्ति को मैं गुरुशक्ति रूप से स्वीकार कर सकता हूँ, अन्य किसी क्षुद्र शक्ति को नहीं। नहीं तो, यह सृष्टि वगैरह चल रही है, और गुरु बेचारे जो बहुत प्रयास कर रहे हैं हमें मुक्त कराने का, वे असफल हो जाएँगे। जो शक्ति हमें बंधनमें डाल सकती है, वही हमें मुक्त करनेवाली है। सृष्टि, स्थिति, लय और निग्रह वह कर रही है, अब हम उसकी आराधना करते हैं, वह हम पर अनुग्रह कर के हमें मुक्त भी करेगी। तो कला भी अपनी, और अपनी ही कलाओं से इन पूरे ब्रह्मांडों की सृष्टि, स्थिति लय करनेवाली यह शक्ति है। ''क्रीडन्तं त्रिपुरे नित्यं परसंविदुरुं भजे'' उस शक्तिको पाना मेरा अधिकार है, क्योंकि मुझमें, याने प्रत्येक व्यक्तिमें, यह क्रीडा कर रही है। त्रिपुरों में -मेरे स्थूल शरीर में, मेरे सूक्ष्म शरीर में और कारण शरीरमें शुद्ध चैतन्य जो क्रीडा कर रहा है, वही गुरुशक्ति है। सृष्टि, स्थिति, लय भी करनेवाली वही है, और

प्रत्येक व्यक्ति में ''अहं'', शुद्ध ''अहं'' रूप से जो विराजमान है, वही शक्ति हमारे लिए गुरुशक्ति बन जाती है। अद्वैत सिद्धान्त यहीं पर सिद्ध कर दिया गया है। ईश्वर, गुरु और आत्मा एक ही हैं, यह यहाँ पर प्रतिपादित हो गया। हमारे आचार्यों के द्वारा जो स्तोत्र लिखे गए हैं, वे अत्यंत ही भावुक दशा में लिखे गए हैं। इन में पहले ही वे स्पष्ट कर देते हैं, कि जिस में आप प्रवेश करनेवाले हैं, वह यह आत्मतत्व ही है।फिर भले ही आप उस को देवी के रूप में देखें, शिवतत्व के रूप में देखें, या गुरुतत्व के रूप में देखें। ''ईश्वरो गुरुरात्मेति मूर्तिभेदविभागिने, व्योमवद्व्याप्त-देहाय दक्षिणामूर्तये नमः॥'' तो यह प्रचंड शक्ति है, जो अनुग्रह करके मुझे मुक्त कर सकती है, और वह मेरे में भी है। मैं उसे पहचानूँ, तो मेरा बेड़ा पार! उस अचिंत्य शक्ति के रूप में गुरु का पहले स्मरण किया, फिर गुरु से उपदेश प्राप्त हुआ....

हर्याकारं हराकारं ह्रीकारं वाम्बिकातनुम्।
हृदयेऽद्वैतमात्मानं द्योतयन्तं गुरुं भजे ॥२॥

बुद्धि के स्तर पर मैं समझ सकता हूँ, स्वीकार कर सकता हूँ कि एक शक्ति है, मैं उस की आराधना कर रहा हूँ। मन को शांत किया, और एक शुद्ध अहं को मैने पहचाना, आँखे खोलीं, तो फिर व्यवहार में डूबा, फिर भूल गया। तो इस प्रकार का एक द्वंद्वसा होता रहता है। यदि उस द्वंद्व से हम निकलना चाहते हैं तो उपासना अनिवार्य होती है। इसी लिए उपासनामें पहले प्रवेश करवाते हैं गुरु, मंत्रोपदेश से।

गुरु कहते हैं कि उस अचिंत्य शक्ति को अपने इष्टदेवता के रूप में पहले स्वीकार करो, उस की आराधना करो, उस से संपर्क बनाओ। इस उद्देश्य से कहा ''हर्याकारं हराकारं''। हरि की आकृति में अपने इष्टदेवता

को देखो, कृष्ण, विष्णु इत्यादि के रूपमें उन की आराधना करो । अथवा ''हराकारं'' नटराज के रूप में, शिवलिंग में, दक्षिणामूर्ति रूप में उस शिवतत्व को प्राप्त करने का प्रयास करो। ऐसा उपदेश दिया जाता है, मार्गदर्शन किया जाता है, उपासना में। ''ह्रींकार''-यदि उतनी योग्यता, उतना अधिकार हो, तो बीजाक्षरों से युक्त मंत्र दिया जाता है। उस में विशेष कोई आकृति का ध्यान नहीं कर सकते। केवल नाद पर अनुसंधान करना होता है। नादानुसंधान से मन शांत होता ही है, और फिर अंतस्थ जो शक्तियाँ हैं, वे जागृत होने लगतीं हैं। फिर आप अपनी उपासना में ले जाए जाते हैं। मार्गदर्शन होता है।

उतनी योग्यता न हो, तो किसी एक देवी की प्रतिमा, उस की पूजा, अथवा उस का ध्यान, करना सिखाते हैं, गुरु। ''हृदयेऽद्वैतमात्मानं द्योतयंतं गुरुं भजे''। अन्ततोगत्वा, शिष्य के हृदय में बसे अद्वैत आत्मा को प्रकट करानेवाले गुरु का मैं भजन करता हूँ। चाहे मैं अद्वैत तत्व को स्वीकार भी करूँ, पर वह ज्ञान जीवन में उतर नहीं आता, इसी लिए पहले उपासना में प्रवेश कराके, इष्टदेवता की आराधना, मंत्रजप इत्यादि सिखाते हैं गुरु। वहाँ पर मंत्रों का अनुसंधान करते-करते, धीरे-धीरे हृदय में अद्वैत आत्मतत्व जो है, वह प्रकट होने लगता है। ''द्योतयन्तं गुरुं भजे''। इसे प्रकट करनेवाले गुरु का मैं ध्यान करता हूँ, भजन करता हूँ।

यह हमारे स्तरपर आ रहा है। यहाँ पर साधक को पुरुषार्थ करना पड़ता है, प्रयास करना पड़ता है। उपासना में पुरुषार्थ की बहुत आवश्यकता रहती है। जो नियम दिये गए हैं, उन का पालन करना अति आवश्यक है। नियमों का पालन करते समय अंतःकरण में शुद्धि आने लगती है। सहजतया वह प्रकट नहीं होती। इसलिए साधक सोचते बैठता है कि

पता नहीं क्या हो रहा है, दो साल से जप कर रहा हूँ, और अभी भी छोटे से छोटे कारण पर गुस्सा आता है। ठीक है, यह सब हट जाएगा। मुख्यतः जो निष्ठा बढ़ रही है, उस की ओर आप ध्यान दीजिएगा। क्योंकि सीधे तत्क्षण वह तत्व बताया जाए तो हम देख नहीं पाएँगे, समझ नहीं पाएँगे। कहते हैं ''अध्यारोपापवादाभ्याम् निष्प्रपंचं प्रपंच्यते'' पहले शुद्ध अध्यारोप करना पड़ता है, फिर अपवाद करना पड़ता है, और उस वस्तु को निकालना पड़ता है। फिर हमारी समझ में आता है कि यह ऐसा है। एक दृष्टांत यहाँ पर कई घरोंमें आप ने देखे होंगे, काँच के दरवाजे। इतनी स्वच्छ काँच है, कि जबतक हमें पता नहीं, वहाँ जाकर उस से हमारी टक्कर हो जाती है। चिड़िया तो कभी सीखती ही नहीं। आकर उस पर टक-टक-टक-टक-टक करती रहती है। ताकि हम उन चिड़ियों जैसे न बनें, उस काँच पर कुछ न कुछ चिपकाया जाता है। अध्यारोप किया जाता है। वह काँच का दरवाजा जो है, दिखाई नहीं दे रहा, इसलिए उस पर कुछ चिपकाया, ध्यान में लाया कि यहाँ पर काँच है, फिर वह हटा दिया। चिपकाई हुई वस्तु हटा दी, उस के बाद भी हमारे ध्यानमें बात रह गई, कि वह काँच है। अध्यारोप करना और फिर उस वस्तु को हटाना, इसी प्रकार से गुरु हमें मंत्र और इष्टदेवता देते हैं। फिर इनके द्वारा मन केन्द्रित करने से, इष्टदेवता का स्वरूप आत्मा में ही लीन हो जाता है, और हम उस में लीन हो जाते हैं। मंत्र, इष्टदेवता बाधा नहीं डालते। वे मन को केन्द्रित करने में सहायता करते हैं, और जो निष्प्रपंच है, उस का ज्ञान हमें हो जाता है अध्यारोप अपवाद से। इसी लिए बड़ी श्रद्धा से, निष्ठा से, जो बताया गया है, वह सब करना पड़ता है।

एक साधक था, अच्छा साधक था, उस ने सुना कि उस के गाँव

के बाहर, जंगल में एक बड़े महात्मा रहते हैं। तो इस साधक ने सोचा, कि मैं भी साधना करूँ। वहाँ पर गया तो महात्मा ने पूछा, ''क्यों आया ओ छोरा?'' कहा, ''मैं साधना करना चाहता हूँ। आपसे मार्गदर्शन चाहता हूँ। मैं सेवा करूँगा।'' महात्मा ने कहा कि ठीक है, ध्यान में प्रवेश करना चाहते हो, रहो यहाँ पर कुछ दिन। वह रहा वहाँ पर। महात्मा ने कई काम दिये उस को। कहा, ''वह करो, यह करो, यहाँ साफ करो, वहाँ साफ करो।'' एक सप्ताह के बाद लड़का सोचने लगा, क्या हो रहा है, मुझे ध्यान का तो कुछ नहीं सिखा रहे हैं, कैसे बैठना, कैसे प्राणायाम करना। वह जरा दुःखी हो गया। जल्दी सीखना चाहता था। सोचा था कि एक हफ्ते में कम से कम एक छोटीसी ज्योति तो दिखने लगेगी। यहाँ तो कैसे बैठना यह मार्गदर्शन भी नहीं मिल रहा था। तो फिर पंद्रह दिन के बाद वह अचानक आया, प्रणाम किया महात्मा को, और कहा, ''मुझे संदेश आया है घर से, कोई बीमार है, मुझे घर जाना पड़ेगा।'' महात्मा ने कहा ''ठीक है बेटा, थोड़ा परिपाक आनेपर वापस आ जाना।'' तो वह घर गया। वहाँ लोगोंने पूछा, कि भई, क्या किया वहाँ पर जाकर। ध्यान सीखकर आए? कैसे बताता कि केवल झाडू मारा, अब उस लड़के ने देखा था महात्मा को, कि वे कैसे बैठते थे, ध्यान करते थे। बाहर का देखकर वह प्रयास कर रहा था, सीखने का। महात्मा के पास एक बिल्ली थी। वे जब कभी बैठते, वह बिल्ली उन की गोद में आकर बैठ जाती। इस लिए जप में बैठने से पहले वे उस बिल्ली को अंदर बाँध देते थे। लडकेने यह भी देखा था। इस लिए जब वह ध्यान करने बैठा, पहले उस ने एक बिल्ली मंगाई, उस बिल्ली को अंदर बाँद दिया....। ध्यान ऐसे नहीं किया जा सकता। इस को कहते हैं अनुकरण। जैसा देखा ठीक वैसा ही किया। आंतरिक जो शुद्धि लानी है, उस के लिए हमें अनुसरण करना पड़ता है

केवल अनुकरण नहीं। अनुसरण आंतरिक ही होता है। इसका बाहर प्रकटन नहीं हो सकता। इस लिए मंत्रजप दिया दाता है, मंत्र दिया जाता है। आप जैसे वह मंत्र करेंगे, उस मंत्र का, जिस में गुरुशक्ति है, उस का आप को अनुसरण करना पड़ेगा। वह मंत्र आप में जो कमियाँ है, उन को पहले प्रकट करेगा। उस को सहन करके, उस विष को आप को बाहर निकालना पड़ेगा। शिवजी ही स्वीकार करेंगे, नीलकंठ जो हैं! और फिर जब खूबियाँ अंदर से उभर आएँगीं, उन को भी प्रकट करना पड़ेगा। उस समय उस गुरुशक्ति का सच्चे रूप से अनुसरण आप कर रहे हैं, आप का मार्गदर्शन हो रहा है, आप खिल रहे हैं। तो मंत्रजप करते समय ऐसे होता है। इस स्तोत्र के पहले दो श्लोकों में कहा गया है कि उस गुरुशक्ति को, जो सृष्टि, स्थिति, लय करनेवाली शक्ति है, और जो मुझ में भी 'अहं'-रूप से है, मैं उस शक्ति को गुरु-रूप से स्वीकार करता हूँ। फिर वही गुरु, जो मुझे इष्टदेवता और मंत्र देते हैं, और अन्ततो गत्वा मुझे मेरे ही हृदय में अद्वैत-आत्मा का ज्ञान दिलाते है, ऐसे गुरु का मैं भजन करता हूँ।

तृतीय श्लोक में यह स्तोत्र निजी स्तर पर आता है। आदिगुरु शंकराचार्य के शिष्य ने इस स्तोत्र की रचना की। तो वे अपने गुरु, शंकराचार्य का ध्यान करते हुए इस स्तोत्र को प्रकट कर रहे हैं। गुरु बैठे हैं...

शिवप्रियं च रुद्राक्षं गले भाले त्रिपुण्ड्रकम्।
करे संविन्मयीं मुद्रां धारयन्तं गुरुं भजे ॥३॥

''शिवप्रियं''-शिव की आराधना करनेवाले गुरु। ''रुद्राक्षं'' - जो रुद्राक्ष की माला धारण किए हैं। गले रुद्राक्ष की माला और ''भाले त्रिपुण्ड्रकंम्'' - भस्मांकित जिन का ललाट है, ऐसे गुरु का मैं ध्यान करता हूँ। ''करे संविन्मयीं मुद्रां'' - हाथ से चिन्मुद्रा, ध्यान मुद्रा जो

प्रकट कर रहे हैं, ऐसे गुरु का मैं भजन करता हूँ। तो रूप का स्मरण करते समय, जो तत्व रूपमें प्रतिपादित हो रहा है, इस रूपके द्वारा, आपका ध्यान, उस तत्वकी ओर जाना चाहिए। ''शिवप्रियं'' शिव-मङ्गलम्। जो मंगल है, उसी को चाहते हैं गुरु। तो उस मंगलता की उपासना करनेवाले गुरु, और उपासना में शास्त्रोक्त उपासना करनेवाले गुरु हैं, इसी लिए रुद्राक्ष धारण किए हुए हैं। भस्म भी धारण किये हुए हैं, उपासना में तत्पर हैं, और ज्ञान प्रकट करने के लिए चिन्मुद्रा भी प्रदर्शित करते हैं। ऐसे गुरु का मैं ध्यान करता हूँ। यदि मैं ऐसे ध्यान करूं तो मेरी उपासना में कुछ शुद्धि आएगी। नहीं तो मन लगा तो जप किया, मन नहीं लगा तो छोड़ दिया, ऐसा होता रहेगा। इन मंत्रों का प्रयोग करते समय शुद्धि रहनी चाहिए। कोई कहता है कि बिस्तरे पर ही बैठकर मैं जप करता हूँ। कीजिएगा, पर नियमित निष्ठायुक्त जप जो रहता है, उसें शुद्धिपूर्वक रीति से करने पर ही वह शक्ति जागृत होगी, नहीं तो उस मंत्र की अवहेलना हो गई, यही समझेंगे हम। इसीलिए, ऐसे पावन, पवित्र गुरुओं का मैं जब स्मरण करता हूँ, तब मैं भी इन उपायों को स्वीकारता हूँ।

हमारे शास्त्र हैं, मणि, मंत्र, औषधि। ये तीनों चीजें हैं, जो एक मनुष्य के अंतःकरण में परिवर्तन ला सकती हैं। 'औषधि'' - एक आदमी भाँग ले ले तो क्या होगा? मन में कोई तो परिवर्तन आएगा ना? देखा है आपने कभी किसी को भाँग लिए हुए? वह अपने आप को संभाल नहीं सकता। यह भाँग का प्रभाव है, औषधि का प्रभाव है। कुछ सात्विक औषधियाँ रहती हैं, जैसे ब्राह्मी इत्यादि, जिन का उपयोग करने से मन शांत होता है। रुद्राक्ष धारण करने से मन में एक सात्विकता आती है। आप जब विशेष मंत्रों का प्रयोग करते हैं, तो रक्षा की आवश्यकता रहती है। उस समय मंत्रित भस्म धारण करते हैं। इस प्रकार से अपनेआप को

नकारात्मकता से सुरक्षित करके, फिर सूक्ष्म स्तरों में प्रवेश करने की जो प्रक्रिया, जो उपासना है, उस का अवलंबन लेनेवाले, उसे अपनानेवाले गुरु का मैं स्मरण करता हूँ, भजन करता हूँ। जितनी मात्रा में मैं भी उन उपायों को ले सकता हूँ, अपना सकता हूँ, लेता हूँ, और अपनी उपासना को भी तेजस्वी बनाता हूँ। अन्ततोगत्वा आत्मतत्व का ज्ञान देनेवाले गुरु का मैं भजन करता हूँ।

काषायवसनोपेतं करुणार्द्रविलोचनम्।
कामारिसेवनासक्तं कल्मषघ्नं गुरुं भजे ॥४॥

''काषाय'' गैरिक वस्त्र। ''वसनोपेतं''- जो धारण किए हुए है, ऐसे गुरु का मैं ध्यान करता हूँ। ''करुणार्द्र विलोचनम्'' करुणा से, कृपा से आर्द्र हुए हैं जिनके नेत्र। ''कामारिसेवनासक्तं''- कामारि, शिव। शिवकी सेवा में जो आसक्ति रखते हैं, ऐसे गुरु का मैं ध्यान करता हूँ, भजन करता हूँ। ''कल्मषघ्नं गुरुं भजे'' मेरे जो कल्मष हैं, दोष हैं, उन का निवारण करनेवाले गुरु का मैं भजन करता हूँ। ''काषायवसनोपेतं'' - काषाय वस्त्र धारण किए हुए, याने जो वैराग्य के प्रतीक हैं। मेरा कोई नहीं, मैंने सब कुछ त्याग दिया है। ऐसा दृढ़ निश्चय जिन्होंने किया है, वे तो निर्मम हो गए, निर्मोही हो गए। मेरा दुःख देखकर वे भला क्या करेंगे? कुछ कर पाएँगे? लगता है कि वे तो कुछ नहीं कर पाएँगे। पर यहाँ पर बताया गया है, कि गुरु स्वयं ''काषायवसनोपेतं'' हैं, विरक्त हैं, फिर भी हमारे दुःखको देखकर, ''करुणार्द्र विलोचनम्'' जिन की आँखें भर आतीं हैं, जो करुणा प्रकट करते है, ऐसे गुरु का मैं भजन करता हूँ। वह शक्ति गुरुशक्ति है। यहाँ गुरु उस विराट् गुरुशक्ति का ही प्रतीक हैं। गुरुशक्ति नित्य, शुद्ध, बुद्ध है, वह स्वतंत्र है, लीलावत् कार्य कर रही है, पर जब

हम केवल जीव भाव में फँस जाते हैं और उसके शरण में जाते हैं, वह करुणा प्रकट कर सकती है। हमें इस जीवभाव से निकालकर अपने शिवभाव में पुनः स्थित कराके वह हमें मुक्त कर सकती है। ऐसी गुरुशक्ति का मैं भजन करता हूँ। केवल करुणा के होने से काम नहीं चलेगा। घर-गृहस्थी में करुणा हम बहुत देखते हैं। जब लड़के की परीक्षा का समय आता है, तब उस की माँ के हृदयमें उस के प्रति बहुत करुणा उभरती है। माँ को चिंता हो रही होती है। वह करुणा किसी काम की नहीं है क्योंकि लड़का स्वयं भी चिंतित और उस के घरवाले भी चिंतित। पूरे घरमें चिंता का वातावरण। जो चिंता के परे हो, स्वयं चिंता में मग्न न हो, वही दूसरों का सहाय कर सकता है। उस शक्ति का हम अनुसंधान करते हैं, ''काषायवसनोपेतं'' जो हमारे सुख और दुःख से बहुत परे है, फिर भी हमारे दुःखको देखकर द्रवीकृत होकर, हमें उस दुःख से निकालने में समर्थ होती है, ऐसी गुरुशक्ति का हम ध्यान करते हैं।

''कामारिसेवनासक्तं'' काम के अरि, शिव। याद रखिएगा, ''कामारिसेवनासक्तं कल्मषघ्नं गुरुं भजे'' कहते ही पार्वती परिणय कहते हैं। एक भयंकर असुर उत्पन्न हुआ था, बड़ा आतंक मचाया उसने, और देवता सारे त्रस्त हो गए। देवताओं ने सोचा, अब क्या करें? संकट से पार कैसे पड़ें? तब आकाशवाणी हुई कि शिवपुत्र से ही इस असुरका वध होगा। अब शिवजी तो बैठे हैं समाधि में। सती के शरीर का दहन हो गया है। समाधिस्थ शिवजी का पुत्र कैसे हो ? पार्वती उत्पन्न हुईं। सती ने पुनः जन्म लिया, पार्वती के रूपमें। देवताओं ने कहा कि जल्द से जल्द पार्वती और शिवजी का विवाह हो जाना चाहिए। पार्वती तो संकल्प कर चुकीं थीं, कि पति रूप से शिवजी को ही मैं स्वीकारूंगी। शिवजी सहजतया पार्वती को पत्नी रूपसे स्वीकारते ही। उस में कोई संदेह नहीं था। पर

देवताओं को तो जल्दी थी। इस लिए, शीघ्र कार्य करवाने के लिए उन्होंने कामदेव को बुलाया और उसे आदेश दिया। शिवजी बैठे हैं ध्यान में। पार्वती वहाँपर आईं। कामदेव छुपकर प्रतीक्षा कर रहा था। कामदेव ने अपने बाण छोड़े। प्रहार किया शिवजीपर। शिवजी को तुरंत पता चला कि ऐसा प्रयोग हुआ है। गुस्से में उन्होंने अपना तृतीय नेत्र खोलकर वहींपर कामदेव को भस्म कर दिया, क्योंकि यहाँपर छल का प्रयोग किया गया था। शिवजी, जो मंगल तत्व का प्रत्यक्ष स्वरूप हैं, यह सहन नहीं कर सकते। बाद में शिवजी ने पार्वती को अर्धांगिनी रूप से स्वीकारा। कार्तिकेय उत्पन्न हुए। उन्होंने उस असुर का नाश किया।

''कामारिसेवनासक्तं'', हमारी भौतिक इच्छाएँ जो हमारे निजी स्वभाव के विरुद्ध हैं, और जो हमें इस संसार में फँसा देती हैं, ऐसे काम के अरि जो हैं-ईश्वर-उन की उपासनामें आसक्त गुरुका हम भजन करते हैं। इच्छाएँ होनी चाहिएँ। पर इच्छाएँ कैसीं होनीं चाहिए? हमें शिवकाम बनना है, ओजस्वी कार्य करना है, अच्छी अच्छी बातें करनी हैं, चिंतन करना है, कार्य करना है, ऐसे काम को उत्पन्न करनेवाले शिवजी, और इस के विरुद्ध जो इच्छाएँ हैं, उन को नष्ट करनेवाले भी शिवजी। शिवजी की उपासना में आसक्त गुरुका मैं भजन करता हूँ। मेरे में, प्रत्येक साधक में कई प्रकार के दुःख होते हैं, कल्मष होते हैं, जिन्हें वह पहचानही नहीं पाता, उन को निकालना, या उन को हटाना तो दूर की बात रही। इसी लिए, उन कल्मषों को हटानेवाले गुरुका मैं भजन करता हूँ। उस तत्व में ही ऐसी शक्ति है, जो आच्छादन को हटा सकती है। आच्छादन ही तो कल्मष है। और यह शक्ति उसे प्रकट करती है, जो शुद्ध तत्व है। आत्मतत्व को प्रकट कर देती है। ऐसा कार्य करनेवाली गुरुशक्ति का, गुरु का मैं भजन करता हूँ।

श्रितार्तिभेदनोद्युक्तं शर्मदं शमशोभितम्।
श्रुत्यन्तवाक्यमनिशं श्रावयन्तं गुरुं भजे ॥५॥

''श्रितार्तिभेदनोद्युक्तं''। आश्रित जो आते है, जो उस तत्व के शरण में आते हैं, उन के दुःख का भेदन करने में जो उद्युक्त है। ऐसी प्रचंड वह शक्ति है, उस गुरुशक्तिका मैं भजन करता हूँ। ''शर्मदं शमशोभितम्''। शर्म, ऐश्वर्य, सुख इत्यादि प्रदान करनेवाले गुरु। ऐश्वर्य प्रदान करते है, व्यावहारिक स्तरपर हमारी जो इच्छाएँ हैं, उन को पूर्ण करते हैं। स्वयं वे ''शमशोभित'' हैं। शम, दम, उपरति, तितिक्षा इत्यादि दिव्य संपत्त है, यही उनकी शोभा है, यही उन का वैभव है। बहुत पैसा है इस लिए पैसा देना तो अलग बात हो गई। यहाँ पर गुरु का ऐश्वर्य तो यह दिव्य संपत्त है उन के दिव्य गुण हैं। फिर भी अनुग्रह करके, हमारी जो व्यावहारिक आवश्यकताएँ है, उन को भी पूर्ण करने में समर्थ गुरु का मैं भजन करता हूँ। गुरुसहाय करने से कारोबार अच्छा चलता है, ऐसा सुनने में आता है। शरण जाने से गुरु सबकुछ सँभाल लेते हैं। ''शर्मदं शमशोभितम्''। ''श्रुत्यन्तवाक्यमनिशं श्रावयंतं गुरुं भजे''- ऐसे करते समय भी गुरु का एक ही लक्ष्य होता है, वेदान्त वाक्य श्रवण करवाना। ब्रह्मज्ञान प्रदान करवाना ही गुरु का केवल एक तात्पर्य रहता है, आप की छोटी मोटी घरेलू समस्याओं का समाधान करना नहीं। वह भी होता है, ताकि आप और भी उपासना में लग जाएँ, ताकि आपका भगवान से संपर्क और दृढ हो जाए। पर तात्पर्य, प्रयोजन, किसी गुरु-शिष्य संबंध का जो रहता वह है -ब्रह्मज्ञान का आदान प्रदान। ऐसे ''श्रुत्यन्त'' वाक्य, वेदान्त वाक्य ''अनिशं श्रावयन्तं'' सुनवाने में, चाहे वह किसी भी प्रकार से हो, चाहे बातों-बातों में, हँसी-मजाक में, या तो फिर एक सभा में वेदान्त चिंतन

करते हुए हो, या स्वाध्याय करवाते हुए हो, एक ही प्रयोजन सिद्ध हो रहा है, और वह है- वेदान्त महावाक्य का श्रवण। श्रवण करवाना - उपदेश देना। ऐसे ब्रह्मज्ञान प्रदान करने में उद्युक्त जो गुरु हैं, उन का मैं भजन करता हूँ।

संशयोच्छेदने दक्षं रक्षिताचार्यसन्ततिम्।
स्वनाथ-करपाथोज-सञ्जातं सद्गुरुं भजे ॥६॥

श्रवण किया, संशय उत्पन्न हुआ। उस संशय को नष्ट करने में जो दक्ष हैं, कुशल हैं, ऐसे गुरु का मैं भजन करता हूँ। ''रक्षिताचार्यसन्ततिम्'' वे गुरु जो परंपरा से दीक्षित हैं, शिक्षित है, रक्षित हैं। 'स्वनाथ करपाथोज सञ्जातं सद्गुरुं भजे 'अपने गुरु के करकमल से जो अनुग्रहित हैं, ऐसे गुरु का मैं अवलंबन लेता हूँ, उन का मैं भजन करता हूँ। ऐसे गुरु से हमने ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। कुछ प्रामाणिकता आती है उनमें। वे परंपरा को लेकर चलते हैं। चाहे कोई भी वस्तु क्यों न हो, यदि आप उस की जाँच करना चाहते हैं, तो आप दूसरों से पूछते हैं कि क्या आपने इस का प्रयोग किया है, आप इस के बारे में जानते हैं? क्या और किसी ने इस का प्रयोग किया है? उस का परिणाम क्या था? ठीक है? तब जाकर आप उस का प्रयोग करते हैं। पूछके ही करते हैं। तो पूछना, जाँच करना, उसको परंपरा कहते हैं। परंपरासे अनुग्रहित जो गुरु हैं, मैं उन का भजन करता हूँ, तब मैं सुरक्षित रहता हूँ। नहीं तो मैं गुमराह हो जाऊँगा।

अभी तो बैठे रहने का हमें अभ्यास हो गया है, पर सात साल पहले शिराली में जब आए, माऊँट आबू से, अचानक सारी बातें बदल गईं। पहले, माऊँट आबू में बहुत चलते थे। खूब काम किया करते थे। मठ में आते ही घंटों बैठना ही पड़ता था। बस बैठे ही रहो। तब तीन

महीनों के बाद कुछ दर्द होना शुरु हुआ। एक घंटा बैठते, तो पता नही क्यों, बहुत दर्द होता था। इच्छा होती थी कि पैर सीधे करें। कर नही सकते। हमारी अवस्था को देखकर हमारे शिष्यवर्ग में से एक भटजी जो उस समय छात्र था, उसने कहा ''स्वामीजी, मैं होमियोपैथिक दवाई देता हूँ, इस से दो दिन में सब दर्द ठीक हो जाएगा।'' हमने कहा ''भाई, ऐसा दर्द है, सचमुच कुछ है आप के पास इसके लिए?'' तो कहने लगा ''है ना'' हम ने पूछा ''इसका पहले कहीं प्रयोग किया है?'' जवाब मिला ''हाँ किया है, ना। हमारी गोशाला मे एक गाय थी, वह भी ऐसे-ऐसे चलती थी। उस को मैंने दिया, दो दिनमें ठीक हो गई..'' लेते वह दवाई, तो हमारा क्या होता? शायद उठ ही नहीं पाते! ऐसी छोटी बातों में भी हम देखकर, पूछकर, फिर कार्य करते हैं, उस का सेवन करते हैं, उस का प्रयोग करते हैं। इसलिए ''रक्षितआचार्यसन्ततिम्।'' ''स्वनाथ-करपाथोज-सञ्जातं सद्गुरुं भजे।'' अब एक बहुत सुन्दर बात आगे बताई गई है ...

दीक्षितं शिष्यमोक्षार्थे साक्षात्कृतमहत्पदम्।
दक्षिणामुखदेवांशं ब्रह्मनिष्ठं गुरुं भजे ॥७॥

दीक्षा होती है, हम मंत्रदीक्षा प्राप्त करते हैं। मैं दीक्षित होता हूँ, तो मैंने कुछ नियमों को स्वीकारा है, प्रतिदिन मैं जप करूँगा, इत्यादि, इत्यादि। यहाँ पर कहते हैं कि मैं उस गुरु का भजन करता हूँ, जो स्वयं दीक्षित हैं। शिष्य दीक्षित होता है, गुरु भी दीक्षित होते हैं। गुरु की दीक्षा क्या रहती है? शिष्य के लिए उन्होंने संकल्प किया होता है कि यह जीव अपने शिवतत्व को पहचाने। इसे आत्मज्ञान हो। ऐसा उन का संकल्प रहता है, और वे स्वयं उस में दीक्षित होते हैं। तो जबतक शिष्य मुक्त नहीं होता,

तब तक गुरु का कार्य चलता ही रहेगा। गुरु ने यह वचन दिया है। तो मैं अपनी कमियों से, अपने मन की चंचलता के कारण जब दुःखी होता हूँ, कि मंत्र तो लिया है, पर जप ठीक से नहीं होता, और खिन्न रहता हूँ, तब मैं किस का स्मरण करूँ? गुरुशक्ति का। वह गुरुशक्ति भी दीक्षित है, मुझे मुक्त करने में वह भी प्रयास कर रही है, वह भी मेरे अज्ञान को दूर कर रही है, ऐसा सोचते ही मन शांत होने लगता है, और हम गुरुशक्ति का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए ग्रहणशील बन जाते हैं।

हम अपनी साधना से कुछ नई चीज़ नहीं पा रहे हैं। साधना से हम किसी शक्ति का जागरण करेंगे। कितनी बड़ी हो सकती है वह शक्ति? क्षुद्र शक्ति होगी। पर उस क्षुद्र शक्ति से हम मन को एकाग्र करते हैं, और फिर वह प्रचंड शक्ति जो है, हम उस को पाते हैं। वह हमारी आत्मशक्ति है, जिस को हम गुरुशक्ति कहते हैं। ईश्वर अनुग्रह कर रहे हैं। हम ने जो बैठकर अपने आप को बन्दी बनाए रखा है, उन बंधनों को हम छोड़ रहे हैं, ताकि वह अनुग्रहात्मिका शक्ति हमें मुक्त करे। यही हमारी उपासना है। इसी लिए, जो स्वयं दीक्षित हैं, हमें मुक्त करने में, ''दीक्षितं शिष्यमोक्षार्थे'', ऐसे ब्रह्मनिष्ठ गुरु का हम भजन करते हैं।

ग्रन्थिं भित्त्वा विनिर्यान्तं वर्षन्तं गगनेमृतम्।
कोटिविद्युत्प्रतीकाशं शक्तिपुञ्जं गुरुं भजे ॥८॥

साधना में एक विशेष प्रक्रिया होती है। हम बैठकर प्राणायाम इत्यादि करके, मन को शांत करके फिर हम उस चितिशक्ति का कुण्डलिनी रूपसे ध्यान करते हैं।

''प्रकाशमानां प्रथमे प्रयाणे प्रतिप्रयाणेऽप्यमृतायमानाम्।
अन्तःपदव्यामनुसञ्चरन्तीमानन्दरूपामबलां प्रपद्ये ॥''

ध्यान करते ही वह उठती है। प्रकाश का अनुभव होता है, अंधकार दूर होता है। वह शक्ति सहस्रार चक्र में शिवस्वरूप हो जाती है, फिर अमृतसिंचन करती है। अमृतस्वरूपिणी बनकर पुनः अवरोहण करती है। ऐसे अंतःपदवी में, सुषुम्ना नाड़ी में विचरण करनेवाली यह चितिशक्ति, उस का मैं गुरुशक्ति रूप से ध्यान करता हूँ। ''ग्रन्थिं भित्त्वा'' सारी ग्रन्थियों का भेदन करके, ''विनिर्यान्तं'', बाहर आती है, ''वर्षन्तं गगनेमृतम्'' अमृतस्वरूपिणी बनती है, और फिर पुनः मूलाधार चक्र में स्थित होती है। ''शक्तिपुञ्जं गुरुं भजे''। मैं उस गुरु का, उस गुरुशक्ति का ध्यान उस रूप में कर रहा हूँ, जो मेरे में ही सुप्त शक्ति है, जो जागृत होकर, अज्ञान का नाश करके, अमृतानंदका अनुभव कराते हुए पुनः मूलाधार में स्थित होती है। मैं उस का ध्यान करता हूँ। मंत्र को लेकर, नादात्मक अनुसंधान करते हुए, उस का जागरण करते समय, उसी को मैं गुरुशक्ति रूप से स्वीकारता हूँ। यदि मैं सोचूँ कि मैं अपने हठसे, पुरुषार्थ से उस को जागृत करूँगा, सिद्धियों को प्राप्त करके उन को प्रकट करूँगा, उस का फल भोगूँगा, तो फिर दुर्घटना भी हो सकती है। इसी लिए, जैसे वह शक्ति जागृत होती है, उस में शरण जाकर हम उसे गुरुशक्ति रूप से स्वीकारते हैं।

जनयित्वा निजानन्दे रक्षित्वा मां क्षणे क्षणे।
पाययन्तं भक्तिरसं मातृभूतं गुरुं भजे ॥९॥

अब उस गुरुशक्ति का ''मातृभूतं'' जननी के बराबर यहाँपर चिंतन हो रहा है। ''जनयित्वा निजानन्दे रक्षित्वा मां क्षणे क्षणे''। साधना के

पथ पर कई प्रकार के विघ्न आते हैं। पहले हम सोच बैठते हैं, ''भई, तीन साल में आत्मज्ञान होगा।'' नहीं होता। बहुत क्लेश भी होता है, क्योंकि वह सारा जहर जो है, गलत संस्कार जो हैं, निकाले जा रहे हैं। उस समय ''रक्षित्वा मां क्षणे क्षणे'' प्रति क्षण पदे-पदे हमारा रक्षण करनेवाली वह शक्ति है, जिस को हम गुरुशक्ति रूप से स्वीकार करते हैं। ''जनयित्वा निजानन्दे'' - अपने ही आनन्द में, अपने ही स्वरूप में मुझे जन्म देनेवाले गुरु का, मेरी साधना के पथ में आनेवाले विघ्नों को हटाकर मेरा रक्षण करनेवाले गुरु का मैं भजन करता हूँ। 'पाययन्तं भक्तिरसं'' ताकि मेरे में शुष्कता नहीं आए, ताकि मैं किसी प्रकार से मेरी साधना में हताश नहीं हो जाऊँ, मुझे भक्तिरस का पान करानेवाले गुरु का मैं भजन करता हूँ। तीनों चीज़ें आवश्यक हैं। यदि भक्ति न हो, तो शुष्कता आती है, व्यवहार में भी शुष्कता आती है, इसलिए व्यक्ति और भी दुःखी हो जाता है, और जो निर्गुण में एक आनन्द है, वह भी नहीं पाता। तो ऐसे इन संकटों से हमें बचाते हुए, आगे ले जानेवाले गुरु का ध्यान मैं भक्तिपूर्वक करता हूँ। ''जनयित्वा निजानन्दे'' का यह भी अर्थ है, कि गुरु जब संकल्प लेते हैं, तो यह नहीं कहते कि अरे, यह कैसा आदमी है, कैसा दुष्ट आदमी है, और इस का मैने उद्धार करना है, ऐसे नहीं सोचते। वे उस व्यक्ति में उसका शिवस्वरूप ही देखकर ऐसा संकल्प करते हैं, कि यह तेरा स्वरूप है, और तू इस को प्राप्त करे। ''यही मेरा स्वरूप है, एक ही तत्व है, यही तुम्हारा भी स्वरूप है, ऐसा हो कि तुम उस को पहचानो'', ऐसा कहने वाले गुरु का मैं भजन करता हूँ । अपने ही स्वरूप में जो हमें पुनः जन्म दिलाते हैं , उन गुरु का मैं भजन करता हूँ। अपने ही आनन्द में, आत्मानन्द में ही जो हमें पुनः मुक्त कराते हैं, ऐसे गुरु का मैं भजन करता हूँ। यह अद्वैत सिद्धांत समझ में आना चाहिए। इसके लिए कैसी साधना करें? आप कहो कि दो घंटे बैठकर जप करना। करो, ठीक है। पर यह गुरुतत्व, जिस के आठ लक्षण दिए गए हैं, इस को यदि हमने प्राप्त करना

हो, इस से अच्छा संपर्क करना हो, तो कैसी साधना करनी होगी यह आगे के श्लोक में आता है।

अनन्यभावनागम्य मभयं ज्योतिरान्तरम्।
इच्छाज्ञानक्रियामूल मात्मरूपं गुरुं भजे ॥१०॥

अनन्य भाव से यह प्राप्त हो सकता है। अनन्य भाव याने एक, अन्य नहीं। मैं इस आत्मदर्शन के इलावा और किसी चीज़ को श्रेष्ठतम समझकर नहीं स्वीकार करता। यही मेरे जीवन का लक्ष्य है। अनन्य भाव, अथवा, यही मेरा स्वरूप है, यह स्वीकार लेना, फिर उस में लीन होना, उपासना करना। अनन्य भाव याने, मुझे केवल यही चाहिए। अनन्य भाव से साधना में, उपासना में एक अनन्यता आती है, तादात्म्य होने लगता है, तन्मयता आती है। तन्मयतापूर्वक साधना करना, जो उस साधना से प्राप्त होता है, उस गुरु का मैं भजन करता हूँ। ''अनन्यभावनागम्यं अभयं'' ऐसा करते-करते हृदय में ''ज्योतिरान्तरम्'' ज्योति प्रकट होती है, अभय प्रकट होता है। आश्वासन मिलता है। किसी ने कहा, इस लिए नहीं, आन्तरिक आश्वासन मिलने लगता है ''ज्योतिरान्तरम्''। ''इच्छाज्ञानक्रियामूलं'' यह बार-बार आता है। इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति। ये तीनों शक्तियाँ किसकी रहतीं हैं? चैतन्य की रहतीं हैं। पत्थरमें नहीं रहतीं। कुछ ज्ञान प्राप्त करना चैतन्य का गुण है।जो ज्ञान प्राप्त किया, उसके प्रति इच्छा उत्पन्न होना, यह भी चैतन्यका गुण है। इच्छा को साकार करना, क्रिया – क्रियाशक्ति। ये तीनों शक्तियाँ जहाँसे प्रस्फुटित होतीं हैं, वह चैतन्य है, इस लिए, इच्छा, ज्ञान और क्रियाका मूल जो है, शुद्ध चैतन्य, उसका मैं भजन करता हूँ, गुरु रूपसे।

° यदि भजन करना हो, तो मेरी सारी इच्छाएँ, मेरा सारा ज्ञान, मेरी सारी क्रियाएँ जहाँसे उत्पन्न हो रहीं हैं, उस की ओर मुझे अपना ध्यान ले

जाना पड़ेगा। इसी लिए विचारों में कुछ शुद्धि लानी पड़ती है, साधना बढ़ानी पड़ती है और मंत्रजप द्वारा, धीरे-धीरे, चैतन्य की ओर ध्यान ले जाना पड़ता है, जहाँ से विचार उत्पन्न हो रहे हैं। पर ऐसा करने के लिए हम हर एक विचार का पीछा नहीं करते। इसी लिए जप वगैरह करते समय जो विचार आते हैं, उनको हम महत्व नहीं देते। जहाँ से विचार उत्पन्न हो रहे हैं वहाँ तक हम पहुँचें, तो हमारा काम बन गया। ''इच्छाज्ञानक्रियामूलं'' - साधना के स्तरपर क्या करना है? संकल्प किया, उसके प्रति अच्छी भावना लाई, और उसको क्रियावान् किया। तब जाकर इच्छाज्ञानक्रियामूल को हम प्राप्त कर सकते हैं। उसमें एक अनन्यता आती है। ''आत्मरूपं गुरुं भजे''। आत्मरूप जो गुरु हैं, जो मेरी ही आत्मा हैं, उनका मैं भजन करता हूँ। फिर आगे ....

देशिकेश्वरपश्वादि-भेदशून्यं चिदम्बरम्।
देशकालानवच्छिन्नं निर्विकल्पं गुरुं भजे ॥११॥

यहाँपर ''देशिकेश्वरपश्वादि''। देशिक यानि गुरु। ईश्वर, परमेश्वर और पशु आदि जो जीव जंतु हैं, उनमें भी भेद न देखकर, एक ही तत्व को देखनेवाले गुरु का मैं भजन करता हूँ। ''देशिकेश्वरपश्वादि भेदशून्यं चिदम्बरम्''। जो शुद्ध चैतन्य है, ऐसे गुरु का मैं ध्यान करता हूँ, भजन करता हूँ। देश और काल से अनवछिन्न है, सीमित नहीं है, उसी तत्व का मैं भजन करता हूँ, गुरु का मैं भजन करता हूँ। यहाँ वेदान्त की बात आती है। अन्ततोगत्वा यह तत्व, गुरुतत्व देश और काल से परे है। जैसे मैं स्वप्नावस्थामें बहुत सारी कल्पनाएँ कर सकता हूँ, स्वप्न देख सकता हूँ, और उठनेपर सारे स्वप्न को अपने में ही लीन करता हूँ, वैसे ही यह तत्व सृष्टि, स्थिति, लय कर रहा है, और सारा अपने में ही ले जाता है, इसलिए उस कल्पित देश और कालसे वह सीमित नहीं है, उस से परे है, ऐसे तत्व का मैं भजन करता हूँ। निर्विकल्प गुरु का मैं भजन करता हूँ।

पहले कहाँसे शुरु हुआ चिंतन? सृष्टि, स्थिति, लय निग्रह और अब अनुग्रह करनेवाली शक्ति का मैं ध्यान करता हूँ। भजन करता हूँ। वही शक्ति मुझे इष्टदेवता-मंत्र का उपदेश देकर मेरे अंतःकरण को शुद्ध करके, मन को समाहित करनेवाली शक्ति है, और आत्मा-अद्वैत आत्मा को प्रकट करनेवाली शक्ति है, उसे मैं गुरुरूप से स्वीकारता हूँ, उस का भजन करता हूँ। फिर शिवप्रियं इत्यादि चिंतन कर, उस उपासनामें एक भाव लाया। अब यहाँपर निर्विकल्प स्वरूप जो है गुरुका, उसका चिंतन किया। अब सिद्ध साधक, जिसने आत्मज्ञान प्राप्त किया है, वह अपना उद्‌गार प्रकट कर रहा है...

मज्जन्मजन्मसाफल्यमहो जातमयत्नतः।
यदंघ्रिरेणुसंस्पर्शात् तमानन्दं गुरुं भजे ॥१२॥

मेरे जन्म की सफलता प्राप्त हुई। मेरा पुनः पुनः जन्म लेना अब जाकर सफल हुआ। पता नहीं कितने जन्म लिए, सफलता प्राप्त नहीं हुई, इस लिए और एक जन्म लेना पड़ा। पर अब, इस जन्म में मुझे सफलता प्राप्त हुई है और कहते हैं, 'अहो' आश्चर्यकी बात यह है, यह सफलता ''जातम्'' प्राप्त हुई, अप्रयत्नतः, 'अयत्नतः'। मैनें कोई यत्न नहीं किया जिस के कारण यह आत्मज्ञान मिला। 'यदंघ्रिरेणुसंस्पर्शात् तमानन्दं गुरुं भजे' जिन के पादकमल की धूल मैंने धारण की, बस, उन्हीं के अनुग्रह से अज्ञान का नाश हुआ और मुझे आत्मज्ञान प्राप्त हुआ- 'अहो' आश्चर्य किस बात का? इस लिए कि ज्ञान प्राप्त हुआ बिना कोई प्रयास किए-अयत्नतः। यह न सोचिए कि थोडी सी चरण धूल ले ली, और रख दी सिरपर, और काम हो गया। यह तात्पर्य नहीं है। जो साधक सिद्धि को प्राप्त कर चुका है, उसने खूब सारी साधना की है। पर उसे यह भी पता है, कि उस साधना के फलस्वरूप ज्ञान नहीं हुआ। अपनी साधना

से उसने अपने मन को स्थिर किया। ज्ञान जो प्राप्त करना था, वह अनुग्रह से ही प्राप्त हुआ, इस लिए वह उद्‌गार प्रकट कर रहा है। जो अचिन्त्य है, विलक्षण है, वह मुझे प्राप्त हुआ है, गुरुकृपा से, अनुग्रह से।

जो कोई महापुरुष हों, वे यही कहते हैं, कि भई, यह न पूछो ज्ञान कैसे हुआ। मुझे वह दिया गया। और एक कारण रहता है - आत्मतत्व में कर्तृत्व, भोक्तृत्व नहीं रहता। ब्रह्मज्ञान के उपरांत ''मैने किया'' यह कहना भी अशुद्ध हो जाएगा, इसी लिए, मैंने न कुछ किया, न कुछ मैंने पाया, जो था सो हूँ, यही मेरा स्वरूप है, यह कहना उचित रहता है। यहाँ पर गुरुस्मरण करते समय यह भक्तिपूर्वक कह रहे हैं। इसलिए कह रहे हैं, कि मेरे पुरुषार्थ से यह सब सिद्ध नहीं हुआ, यह तो कृपा से, प्रसादरूप से मुझे प्राप्त हुआ। बात वही है, पर इस में एक माधुर्य है, मधुरता है।

अब एक साधक की बात। साधना करते समय याद रखिएगा इस बात को। एक लड़का था। साधक तो नहीं था, बीस साल की उम्र का होगा। व्यवसाय कौनसा ढूँढना, सोच रहा था। यह चीन देशकी बात है। उस लड़के ने एक प्रसिद्ध शिल्पी के बारे में बहुत सुना था। वे जेड, हरिताश्म पत्थर पर काम करते थे। छोटी-छोटी मूर्तियाँ बनाते थे, बहुत प्रसिद्ध थे। तो लड़के ने सोचा, कि यह तो बहुत अच्छा व्यवसाय है, वहाँ पर जाकर कुछ सीखूँ, तो अच्छा रहेगा। गया।अपना नाम बताया, और अपनी इच्छा प्रकट की। कहा, कि आप की कलाकारी मैं सीखना चाहता हूँ। उस बूढ़ेने देखा, कहा, बैठो। बैठ गया। बैठते ही उसने लड़के को हरिताश्म पत्थर का एक टुकड़ा दिया। लड़के ने देखा, हाथ में पकड़कर बैठा। फिर बूढ़ा उस लड़के के बारे में जो कुछ जानकारी चाहता था, वह उस ने लड़के से पूछी। बूढ़ा बात भी कर रहा था, और अपना काम भी। थोड़ी देर बाद उस ने लड़के से कहा, ''एक घंटा हो गया है, अब तुम

जाओ, कल वापस आना।'' लड़का चला गया। दूसरे दिन वापस आया। आते ही बूढ़े ने उस को बैठने के लिए कहा। बैठा लड़का। फिर से एक पत्थर उस को दिया। लड़का फिर से हरिताश्म पत्थर हाथ में पकड़कर बैठा रहा। सोचता रहा, कि आज तो कुछ सीखने को मिलेगा। पर बूढ़े ने फिर से बातें शुरु कीं, अपनी प्राण कथा, परंपरा का विस्तार से वर्णन, पहले कैसे किया करते थे, इत्यादि। दो घंटे बीत गए। लड़का सुनता रहा, सारी बातें याद रखने का प्रयास भी कर रहा था। और समय निकल गया। फिर बूढ़े ने कहा, ''चलो अब वह पत्थर वापस दे दो। कल आना।'' तीसरे दिन भी ऐसी ही कुछ बातें। चौथे दिन लड़के को सुनाया कि उस के साथ जो थे, उन की क्या गति हुई, कैसे उन का परस्पर इगड़ा हुआ था, फिर उस का समाधान कैसे हुआ, ऐसी सब बातें। लड़का हाथ में हरिताश्म पत्थर लेकर बैठा था, दुःखी हो रहा था। सोच रहा था कि इस बूढ़े की बातें सुननेवाला कोई नहीं था, मैं मिल गया, बकरा, अब सब सुना रहा है। सात दिन ऐसे ही बीते। आठवें दिन उस ने निर्णय लिया, यहाँ तो दाल नहीं गलेगी। यह कुछ सिखाना नहीं चाहता। अपनी विद्या अपने पास ही रखना चाहता है। मैं कल उसे बता दूँगा कि मैं अब नहीं आ पाऊँगा। आठवें दिन गया, बैठा, सोचा कुछ बोलूँ, तभी बूढ़े ने एक और पत्थर उसके हाथ में रखा, कहा ''बैठो'' और फिर दो घंटे बिठाया। लड़के को बहुत गुस्सा आया। सहन किया, फिर जाते समय पत्थर देकर चला गया। नौवें दिन आया, बैठा। आज तो मैं कुछ ज्यादा समय न लेकर इसे बता ही दूँगा, ऐसा संकल्प करके आया था। बूढ़ेने एक पत्थर दिया। हाथ में लेतेही लड़के ने कहा, ''यह हरिताश्म नहीं है।'' आप समझे ना? लड़का सोच रहा था कि वहाँ बैठकर उस का समय व्यर्थ हो रहा है, बूढ़ा अगर उस को कुछ सिखाता, कैसे पत्थर को खरोचना, काटना, वगैरह, तो वह विद्या प्राप्त करता। पर उसे यह भी

पता था, कि वह बूढ़ा एक महापुरुष है, जिस ने अपनी विद्या में सिद्धि प्राप्त की है, और ऐसा आदमी उसे हरिताश्म दे रहा है। उसे पता था कि अगर ऐसा पुरुष मुझे यह दे रहा है, तो वह पत्थर हरिताश्म होगा ही। वह लड़का दो-दो घंटे पत्थर हाथोंमें लेकर बैठता। हर दिन नया पत्थर। बिना जाने ही वह हरिताश्म पत्थरों को समझने लगा, वह पत्थर क्या है, कितना बड़ा या छोटा है, उसका भार कितना होना चाहिए, वगैरह । बिना जाने ही वह सीख रहा था। नौवें दिन परिपाक आया, और अब उसे कोई कच्चा पत्थर दिया गया, तो बिना देखे, छूते ही, धारण करते ही, उसे पता चल गया कि वह असली पत्थर नहीं था। जिस वस्तु पर कार्य करना है, उसे पहले पहचानना चाहिए, है ना? तो वह विद्या उसे प्राप्त हो रही थी। पर वह समझ नहीं सकता था।

हमारी साधना में भी ऐसा ही होता है। जब ज़प करना होता है, पहले तो बहुत उत्साह रहता है, और ऐसे कोई विशेष सत्संग के बाद, तीन दिन तो आप कम से कम छः बजे उठकर जप करेंगे ही। फिर थोडी शिथिलता आने लगती है। पर याद रखिएगा, जो मंत्रजप आप कर रहें हैं, बड़ी श्रद्धा से, उसके कारण शुद्धि आ रही है, चाहे आप पहचानें, या न पहचानें। जो आवश्यक अधिकार है, वह प्राप्त हो रहा है। समय आनेपर वह प्रकट होने लगेगा, फिर सारा सौंदर्य, ऐश्वर्य प्रकट होने लगेगा। इसी लिए निष्ठा और कर्मठताकी आवश्यकता है, जपमें, छोटे-छोटे नियमों में, तब जाकर आत्मसौंदर्य प्रकट होगा।

श्रीगुरुद्वादशात्मानं ध्यात्वा स्तोत्रमिमं पठेत्।
साधकोत्तमः संविद्-दृष्टिसौष्ठवहेतवे।

॥ॐ नमः पार्वती पतये हर हर महादेव॥

गुरुः शरणम्

गुरुः शरणं गुरुः शरणम्।
सदा मम श्री गुरुः शरणम् ॥ध्रुवपद॥

न मे कर्म न मे शक्तिः
न मे बन्धः न मे मुक्तिः
गुरुः कर्ता गुरुर्दाता
सदा मम श्री गुरुः शरणम् ॥१॥

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः
गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म
सदा मम श्री गुरुः शरणम् ॥२॥

गुरुः शास्त्रं गुरुः शास्ता
गुरुः शिष्यस्य तारकः
गुरुः संवित् स्वरूपात्मा
सदा मम श्री गुरुः शरणम् ॥३॥

।। श्री महिषान्तकरी-सूक्तम् ।।

'ॐ' ऋषिरुवाच

शक्रादयः सुरगणा निहतेऽतिवीर्ये
तस्मिन्दुरात्मनि सुरारिबले च देव्या।
तां तुष्टुवुः प्रणतिनम्रशिरोधरांसा
वाग्भिः प्रहर्षपुलकोद्गमचारुदेहाः ॥ १॥

देव्या यया ततमिदं जगदात्मशक्त्या
निश्शेषदेवगणशक्तिसमूहमूर्त्या।
तामम्बिकामखिलदेवमहर्षिपूज्यां
भक्त्या नताः स्म विदधातु शुभानि सा नः ॥ २॥

यस्याः प्रभावमतुलं भगवाननन्तो
ब्रह्मा हरश्च न हि वक्तुमलं बलं च।
सा चण्डिकाखिलजगत्परिपालनाय
नाशाय चाशुभभयस्य मतिं करोतु ॥ ३॥

या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः
पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः।
श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा
तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम् ॥ ४॥

किं वर्णयाम तव रूपमचिन्त्यमेतत्
किं चातिवीर्यमसुरक्षयकारि भूरि।
किं चाहवेषु चरितानि तवाद्भुतानि
सर्वेषु देव्यसुरदेवगणादिकेषु ॥ ५ ॥

हेतुः समस्तजगतां त्रिगुणापि दोषै -
र्न ज्ञायसे हरिहरादिभिरप्यपारा।
सर्वाश्रयाखिलमिदं जगदंशभूत -
मव्याकृता हि परमा प्रकृतिस्त्वमाद्या ॥ ६ ॥

यस्याः समस्तसुरता समुदीरणेन
तृप्तिं प्रयाति सकलेषु मखेषु देवि।
स्वाहासि वै पितृगणस्य च तृप्तिहेतु -
रुच्चार्यसे त्वमत एव जनैः स्वधा च ॥ ७ ॥

या मुक्तिहेतुरविचिन्त्यमहाव्रता त्व -
मभ्यस्यसे सुनियतेन्द्रियतत्त्वसारैः।
मोक्षार्थिभिर्मुनिभिरस्तसमस्तदोषै -
र्विद्यासि सा भगवती परमा हि देवि ॥ ८ ॥

शब्दात्मिका सुविमलर्ग्यजुषां निधान -
मुद्गीथरम्यपदपाठवतां च साम्नाम्।
देवी त्रयी भगवती भवभावनाय
वार्ता च सर्वजगतां परमार्तिहन्त्री ॥ ९ ॥

मेधासि देवि विदिताखिलशास्त्रसारा
दुर्गासि दुर्गभवसागरनौरसङ्गा।
श्रीः कैटभारिहृदयैककृताधिवासा
गौरी त्वमेव शशिमौलिकृतप्रतिष्ठा ॥ १० ॥

ईषत्सहासममलं परिपूर्णचन्द्र-
बिम्बानुकारि कनकोत्तमकान्तिकान्तम्।
अत्यद्भुतं प्रहृतमात्तरुषा तथापि
वक्त्रं विलोक्य सहसा महिषासुरेण ॥ ११ ॥

दृष्ट्वा तु देवि कुपितं भ्रुकुटीकराल -
मुद्यच्छशाङ्कसदृशच्छवि यन्न सद्यः।
प्राणान्मुमोच महिषस्तदतीव चित्रं
कैर्जीव्यते हि कुपितान्तकदर्शनेन ॥ १२ ॥

देवि प्रसीद परमा भवती भवाय
सद्यो विनाशयसि कोपवती कुलानि।
विज्ञातमेतदधुनैव यदस्तमेत -
न्नीतं बलं सुविपुलं महिषासुरस्य ॥ १३ ॥

ते सम्मता जनपदेषु धनानि तेषां
तेषां यशांसि न च सीदति धर्मवर्गः।
धन्यास्त एव निभृतात्मजभृत्यदारा
येषां सदाभ्युदयदा भवती प्रसन्ना ॥ १४ ॥

धर्म्याणि देवि सकलानि सदैव कर्मा -
ण्यत्यादृतः प्रतिदिनं सुकृती करोति।
स्वर्गं प्रयाति च ततो भवतीप्रसादा -
ल्लोकत्रयेऽपि फलदा ननु देवि तेन ॥ १५॥

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदाऽऽर्द्रचित्ता ॥ १६॥

एभिर्हतैर्जगदुपैति सुखं तथैते
कुर्वन्तु नाम नरकाय चिराय पापम्।
संग्राममृत्युमधिगम्य दिवं प्रयान्तु
मत्वेति नूनमहितान् विनिहंसि देवि ॥१७॥

दृष्ट्वैव किं न भवती प्रकरोति भस्म
सर्वासुरानरिषु यत्प्रहिणोषि शस्त्रम्।
लोकान् प्रयान्तु रिपवोऽपि हि शस्त्रपूता
इत्थं मतिर्भवति तेष्वपि तेऽतिसाध्वी ॥१८॥

खड्गप्रभानिकरविस्फुरणैस्तथोग्रैः
शूलाग्रकान्तिनिवहेन दृशोऽसुराणाम्।
यन्नागता विलयमंशुमदिन्दुखण्ड -
योग्याननं तव विलोकयतां तदेतत् ॥१९॥

दुर्वृत्तवृत्तशमनं तव देवि शीलं
रूपं तथैतदविचिन्त्यमतुल्यमन्यैः।
वीर्यं च हन्तृ हृतदेवपराक्रमाणां
वैरिष्वपि प्रकटितैव दया त्वयेत्थम् ॥२०॥

केनोपमा भवतु तेऽस्य पराक्रमस्य
रूपं च शत्रुभयकार्यतिहारि कुत्र।
चित्ते कृपा समरनिष्ठुरता च दृष्टा
त्वय्येव देवि वरदे भुवनत्रयेऽपि ॥२१॥

त्रैलोक्यमेतदखिलं रिपुनाशनेन
त्रातं त्वया समरमूर्धनि तेऽपि हत्वा।
नीता दिवं रिपुगणा भयमप्यपास्त-
मस्माकमुन्मदसुरारिभवं नमस्ते ॥२२॥

शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके।
घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिः स्वनेन च ॥२३॥

प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके रक्ष दक्षिणे।
भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि ॥२४॥

सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते।
यानि चात्यर्थघोराणि तै रक्षास्मांस्तथा भुवम् ॥२५॥

खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके।
करपल्लवसङ्गीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः ॥२६॥

(From Chapter IV of Shree Durgasaptashati)

।। श्री महिषान्तकरी सूक्तम् ।।

कर्णस्वर्णविलोलकुण्डलधराम् आपीनवक्षोरुहाम्
मुक्ताहारविभूषणां परिलसत्धम्मिल्लसम्मल्लिकाम्।
लीलालोलित लोचनां शशिमुखीम् आबद्ध कांचीस्रजम्
दीव्यन्तीं भुवनेश्वरीमनुदिनं वन्दामहे मातरम् ।।

।।ॐ श्री गुरुभ्यो नमः ।। ।।श्री भवानीशंकराय नमः ।।

श्री दुर्गा सप्तशती मार्कण्डेय पुराण में से ली गई है। सप्तशती के चौथे अध्याय में इन्द्र तथा अन्य देवताओं के द्वारा की गई देवी भगवती की अत्यंत भावुक और सुन्दर स्तुति आती है। इस शक्रादय स्तुति पर हम चिंतन कर रहे हैं।

महिषासुर नाम का एक असुर उत्पन्न हुआ था, जिस ने बहुत आतंक मचाया था। इन्द्र आदि देवता भयभीत होकर त्रिमूर्ती के पास गए। देवताओं की दशा के बारे में सुनकर शंकर अति क्रोधित हुए, और उन के शरीर से एक तेजपुञ्ज प्रकट हुआ। वैसे ही ब्रह्मा और विष्णु के शरीरोंसे भी तेजपुञ्ज बाहर निकला। उनका वह क्रोध देखकर देवताओं का साहस बढ़ गया। उन्हों ने संकल्प किया कि महिषासुर का अत्याचार वे सहन नहीं करेंगे, और उनके शरीरों से भी एक प्रकाश का तेज निकला। वह सारा तेज एकत्रित हो गया, और उस तेजने भगवतीका स्वरूप धारण किया। वह स्वरूप अत्यंत सौम्य था। भगवती हिमालय पर जाकर विराजमान हुईं। महिषासुर वहाँपर आया। उसने देखा कि एक नारी बैठीं हैं। तनिक भी उसने सोचा नहीं

कि निरातंक वे बैठीं हैं, और तत्क्षण, बिना कुछ सोचे-समझे, बिना कोई सोच विचार किए, उसने उनपर प्रहार किया। देवी को देखकर क्या पता उस के मनमें क्या विचार आया? सोचा होगा, कि इन के द्वारा, मेरे प्रभाव-प्रताप में कुछ कमीं आ जाएगी, तो इससे पहले ही मैं इन की हत्या कर दूँ; और यह करने में उसने अपनेआप को समर्थ समझा! इस का परिणाम यह हुआ, कि एक बड़ा युद्ध छिड़ गया, जिस में भगवती नें महिषासुर का वध किया। यह महायुद्ध समाप्त होने के पश्चात्, इन्द्र आदि देवता एकत्रित होकर, भगवती के सामने गए और नतमस्तक हुए। देवी के दिव्य दर्शन होने पर उन्होंने महिषान्तकरी सूक्तम् द्वारा आदिशक्ति की स्तुति की। इस स्तुति से हमें यह बोध मिलता है कि देवी की आराधना भक्तिपूर्वक कैसे की जाए। क्योंकि यह स्तुति शास्त्र है, इस में आत्मतत्व का उल्लेख शुरुआत में ही आता है। देवताओंने स्तुति के प्रारम्भमें ही स्पष्ट किया कि देवी, भगवती, चितिशक्ति, संवित्स्वरूपिणी कोई क्षुद्र शक्ति नहीं, जो केवल उन का काम कर दे। यह तो ब्रह्मस्वरूपिणी हैं। इस स्तुति में देवता, भगवतीकी उत्कृष्टता, उन की अनुपम शक्ति, प्रभाव और पराक्रम का भक्ति और आदरपूर्वक गुणगान करते हुए, उनसे प्रार्थना करते हैं कि वे देवी उनकी रक्षा करें। दुर्गा सप्तशती मंत्रात्मक होने के कारण उसमें रक्षण का सामर्थ्य है।

शक्रादयः सुरगणा निहतेऽतिवीर्ये
तस्मिन्दुरात्मनि सुरारिबले च देव्या।
तां तुष्टुवुः प्रणतिनम्रशिरोधरांसा
वाग्भिः प्रहर्षपुलकोद्गमचारुदेहाः ॥१॥

ऋषि कहते हैं कि देवी के द्वारा उस दुरात्मा महिषासुर का वध होने पर, इन्द्र आदि देवताओं ने देवी के दर्शन करते हुए, विनीत भाव

से, श्रद्धापूर्वक गर्दन तथा कंधे झुकाकर उन को नमस्कार किया, और देवी को संतुष्ट करने के लिए, वाणी से उन की स्तुति की। क्योंकि देवताओं को देवी के दिव्य दर्शन हो रहे थे, उन के सुन्दर शरीरों में अत्यंत हर्ष के कारण, प्रहर्ष, उत्कर्ष के कारण रोमाञ्च हो रहा था। वे पुलकित हो रहे थे। स्तुति की शुरुआत में ही उन्होंने स्पष्ट किया, कि यह देवी चितिशक्ति है, संवित्स्वरूपिणी हैं, कोई क्षुद्र शक्ति नहीं, जो केवल उन की माँग पूरी करे, उन का काम कर दे। यह तो ब्रह्मस्वरूपिणी हैं।

देव्या यया ततमिदं जगदात्मशक्त्या
निश्शेषदेवगणशक्तिसमूहमूर्त्या।
तामम्बिकामखिलदेवमहर्षिपूज्यां
भक्त्या नताः स्म विदधातु शुभानि सा नः ॥२॥

देवता जानते थे कि देवी चितिशक्ति है, ब्रह्मस्वरूपिणी हैं। इसलिए वे कहते हैं, कि जिन देवी के द्वारा यह संपूर्ण जगत उन की अपनी ही आत्मशक्ति से व्याप्त हुआ है, उन देवी की शक्ति में सारे देवताओं की शक्ति समाहित है। वही देवी देवताओं को शक्ति प्रदान करतीं हैं। देवता कहते हैं, कि देवी की आत्मशक्ति से व्याप्त जो जगत है, यह हमें दिखाई देता है। देवताओं ने यह तो नहीं देखा था, कि एक ही शक्ति से कैसे विभाजित, उन्हीं की विभूतियाँ प्रकट हुईं और कैसे सृष्टि प्रारंभ हुईं। उन्होंने सृष्टि-क्रम ही देखा था। महिषासुर के आतंक का उन्हें अनुभव था, और महिषासुर वध के पहले, उनके सामने ही त्रिमूर्ति ब्रह्मा-विष्णु-शंकर और इन्द्र तथा अन्य देवताओं की शक्तियाँ

पुनः एक मूल स्रोत में समाहित हो गईं, और देवी का रूप प्रकट हुआ। वे कहते हैं, कि ऐसी वे देवी, अम्बिका, जगदम्बा, जिन की पूजा, आराधना देव, महर्षि और ब्रह्मनिष्ठों ने की है, उस प्रचंड शक्ति को हम नमस्कार करते हैं। वे देवी हमे शुभता प्रदान करें; हमारे सभी कार्यों में मंगलता प्रदान करें।

यस्याः प्रभावमतुलं भगवाननन्तो
ब्रह्मा हरश्च न हि वक्तुमलं बलं च।
सा चण्डिकाखिलजगत्परिपालनाय
नाशाय चाशुभभयस्य मतिं करोतु ॥३॥

जिन देवी के प्रभाव, बल और पराक्रम का वर्णन करने में ब्रह्मा, विष्णु और हरिहर भी असमर्थ हैं, वे देवी चण्डिका, वह प्रचंड, अचिन्त्य शक्ति, सारे जगत का परिपालन करने का, और हमारे अशुभ, अमंगल भय का नाश करने का संकल्प करें। ऐसी प्रार्थना केवल देवी से ही की जा सकती है, क्योंकि मंगलता प्रदान करने का सामर्थ्य केवल देवी, चितिशक्ति में ही है। जब हम विशेष कुछ चाहते हैं, तब हम उस चाह से संबंधित देवता की आराधना करते हैं। लेकिन जब सर्वतो भद्र मंगलता की इच्छा होती है, तब हम देवी के ही चरणों में प्रार्थना करते हैं।

या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः
पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः।
श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा
तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम् ॥४॥

अब व्यवहारिक स्तर पर उसी शक्ति के प्रकटन के बारे में बताया गया है। यह इस लिए, कि हम उस शक्ति से सम्पर्क करें। ऐसा न हो, कि हम सोचें कि हाँ वह शक्ति शायद है भी, पर उस से हमारा क्या संबंध ?

देवता कहते हैं कि हम ने आप को देखा है और आप का प्रभाव हम ने लौकिक स्तर पर भी देखा है; व्यवहार में देखा है। जो व्यक्ति अच्छा कार्य करते हैं, सुकृति हैं, सदाचारी हैं, उन के घरों में आप स्वयं मंगलता, श्री, ऐश्वर्य रूपसे प्रकट होती हैं। एक ओर ऐसा है, तो दूसरी ओर आपका प्रकटन अमंगलता रूपसे है। जो व्यक्ति आप का तिरस्कार करते हैं, जहाँ आप का त्याग हुआ होता है, आप की आराधना नहीं होती, अवहेलना होती है, उनके घरों में आप अलक्ष्मी, अमंगलता, कलह रूपसे प्रकट होती हैं। एक ही शक्ति, पर अनेक रूप।

जो व्यक्ति कुछ अच्छा कार्य करने का निश्चय करते हैं, और उसका पालन करते हैं-ऐसे नहीं कि कुछ थोडा सा विघ्न आया तो वह कार्य छोड़ दिया-उनके हृदय में आप बुद्धि रूप से प्रकट होती हैं। इसके कारण उन के संकल्प दृढ होते हैं और सिद्ध होते हैं। ऐसे व्यक्ति विघ्नोंको भी देवी का प्रसाद मानते हैं। व्यवहार के क्षेत्र में ऐसे व्यक्ति अत्यंत प्रामाणिक होते हैं, विश्वसनीय होते हैं, और हर अवसर पर दूसरों की सहायता करते हैं। जब वे शास्त्र चिंतन करने लगते हैं और गुरु-उपदिष्ट, शास्त्र-उपदिष्ट मार्गपर प्रगति करते हैं, सत्पुरुष कहलाते हैं, तब उनमें यही बुद्धि और भी तीक्ष्ण हो जाती है, और उन के हृदय

में श्रद्धा रूप से परिणत होती है। व्यवहार के क्षेत्र में श्रद्धा का अर्थ है विश्वास, गुरु-शास्त्र वचन में विश्वास, अत्यंत आस्तिक्य बुद्धि। जो इंद्रियों के परे है, उस का अनुभव करने का प्रयास करते समय आस्तिक्य बुद्धि, श्रद्धा की आवश्यकता होती हैं। ऐसी श्रद्धा रखकर हमं यह प्रयास आरंभ करते हैं, और फिर, हमें अनुभव होता है उस का, जो इंद्रियों के परे है। तब तक श्रद्धा की आवश्यकता होती है। ऐसी श्रद्धा, बुद्धिका विशेष चमत्कार है, परिष्कार है; यह श्रद्धा जो सत्पुरुषों के हृदय में रहती है वह अटूट होती है। उन की परिस्थिति अच्छी हो या बुरी, उन की श्रद्धा केवल दृढ़ होती जाती है। यह श्रद्धा देवी की एक विभूति है, उन का प्रकटन है।

देवी की मंगलता तथा अमंगलता - रूपी, दोनों विभूतियों को उन्हीं का रूप समझकर स्वीकारना है। तुरंत निर्गुण में जाना, देवी के सर्वव्याप्त रूप को जानना संभव नहीं। श्रद्धावान् व्यक्ति हर घटना को दिव्यता से जुड़ने का अवसर मानने लगता है। वह जो कुछ भी देखता है, या अनुभव करता है, सोचता है कि यह सब देवी का ही प्रकटन है, यह मुझे देवी की याद दिलाता है, इसमे मैं देवीका दर्शन कर रहा हूँ। जब कुछ विलक्षणता या सौंदर्य उस के सामने आता है, तो उन्हें वह देवी से जोड़ता है, सोचता है कि मैं धन्य हूँ कि मैं इन अच्छाइयों को पहचान सका और उन को दिव्यता से जोड़ सका। यह उचित है, और यह मुझसे हुआ। वह जानने लगता है कि विलक्षणताएँ केवल एक वस्तु, या व्यक्ति में केंद्रित नहीं हैं, ये तो देवी की दिव्यता से जुड़ी हैं, उनका प्रकटन है। दुःखद अनुभवों के प्रति भी उस की दृष्टि ऐसी ही हो जाती है। राग-द्वेष छूटने लगता है।

कुलीन व्यक्तियो में, जो सुसंस्कारित परिवारों में जन्मे हैं, उन के हृदयों में आप, देवी, लज्जा रूप से प्रकट होती हैं। उन को आप सन्मार्ग पर रखतीं है, और उन की उत्तरोत्तर प्रगति करातीं हैं। लज्जावान व्यक्तियों को अपने कार्य के क्षेत्र में अधिक विचार नहीं करना पडता, क्योंकि उन को अपना मार्ग स्पष्ट दिखाई देता है। उन के व्यवहार में विश्वासघात, छल-कपट के लिए कोई स्थान नहीं होता। केवल अपना स्वार्थ देखने का सवाल ही नहीं उठता। न्याय उन के जीवन में एक मूल सिद्धांत बन जाता है और उन का व्यवहार सदा ईमानदारी जैसे सर्व-मान्य सामाजिक सिद्धांतों पर आधारित रहता है। वे व्यर्थ वस्तुओं को त्याग देते हैं, उन के संकल्प दृढ़ होते हैं और वे अपनी साधना में तत्परता से प्रगति कर पाते हैं। वे हर तरह से सुरक्षित रहते हैं। उन का रक्षण देवी करतीं हैं। हे देवी, विश्व का परिपालन कीजिए। आप को नमस्कार!

किं वर्णयाम तव रूपमचिन्त्यमेतत्
किं चातिवीर्यमसुरक्षयकारि भूरि।
किं चाहवेषु चरितानि तवाद्भुतानि
सर्वेषु देव्यसुरदेवगणादिकेषु ॥५॥

देवता कहते हैं, कि हम देवी के अचिंत्य रूपका वर्णन कैसे करें? यह रूप जो इंद्रियातीत है, मनातीत है, उस का वर्णन हो कैसे सकता है? उन असुरों का नाश करनेवाला आप का वीर्य अवर्णनीय है। युद्ध में पुनः पुनः प्रचुर मात्रा में जैसे असुर पे असुर पैदा होते थे, उन का तुरंत नाश करने में आप जो पराक्रम दिखातीं है, आप का वह

असुर - क्षयकारी स्वरूप, अमंगलता और जो दुःखप्रद है, उस का नाश करनेवाला आप का रूप, आप का प्रभाव, इन का हम कैसे वर्णन करें?युद्ध करके आप ने कार्य सिद्ध किया। उस युद्ध के बारे में हम ने कुछ सुना है, कुछ देखा है, कुछ जानते हैं, पर हम उस का वर्णन कैसे करें? उस का हम क्या चिंतन कर सकते हैं? असुर और देवगणों के बीच जो युद्ध छिड़े उन में आप ने देवताओं की रक्षा की, और असुरों का नाश किया, उस का भला हम क्या वर्णन कर सकते हैं? यह कहकर देवता अपनी विवशता नहीं बता रहे। वे आश्चर्य प्रकट कर रहे हैं।

प्रत्येक स्तर पर देवताओं को स्पष्ट दिखाई देता है, कि देवी के बारे में वे थोड़ा बहुत मन के द्वारा समझ रहे हैं, परंतु देवी मन के परे हैं, उन का रूप अचिन्त्य है। यह स्वीकार करने से, बाद में देवी के संपूर्ण ऐश्वर्य का अनुभव होने लगता है।

हेतुः समस्तजगतां त्रिगुणापि दोषै-
र्न ज्ञायसे हरिहरादिभिरप्यपारा।
सर्वाश्रयाखिलमिदं जगदंशभूत-
मव्याकृता हि परमा प्रकृतिस्त्वमाद्या ॥६॥

अब पुनः वही विषय, कि हे देवी, आप क्या हैं? हम आप का कैसे स्वीकार करते हैं? देवता कहते है कि समस्त जगतों का कारण आप हैं। हमें जो जगत दिखाई देता है, यह जगत कार्य है, जिसका कारण देवी हैं। उन को कारण कहते ही तीन गुण, सत्व, रज और तम देवी में आ जाते हैं। इन गुणों को आप प्रकट करतीं हैं। इन गुणों से

युक्त होते हुए भी, आप दूषित ऐसी नहीं जानी जातीं। गुणों के दोषों से आप लिप्त नहीं हैं। राग-द्वेष से आप युक्त नहीं हैं। आप निर्मल हैं, स्वच्छ हैं। आप ब्रह्म का शुद्ध प्रकाश हैं। यहाँ स्फटिक शिवलिंग का उदाहरण दिया जा सकता है। स्फटिक शिवलिंग जो स्वच्छ होता है, उसके पास में अगर गहरे लाल रंग का जपाकुसुम फूल रखा जाए, तो शिवलिंग लाल दिखाई देता है। जब फूल उठा लिया जाता है, तब शिवलिंग फिर से स्वच्छ दिखाई देता है। लाल रंग को धोकर निकालने की आवश्यकता नहीं पड़ती। शिवलिंग फूल रखने से पहले भी स्वच्छ था, फूल विद्यमान था, तब भी स्वच्छ था, और फूल उठाने के बाद भी स्वच्छ। इसी प्रकार, जब देवी अपने आप में गुण प्रकट करतीं हैं, तब ऐसा लगता है कि वे त्रिगुणात्मिका हैं। पर वे गुणातीत हैं, निर्गुण हैं, स्वतंत्र हैं। सृष्टि रचाने के लिए वे गुणों को प्रकट करतीं हैं।

ब्रह्मा, विष्णु और महादेव से भी आप परे हैं। इन देवताओं को सृष्टि, स्थिति और लय का कार्य करने के लिए शक्ति आप प्रदान करतीं हैं। पर आप सृष्टि, स्थिति, लय से भी परे हैं।

आप सर्वाश्रया हैं। आप आश्रय हैं क्योंकि आप कारण हैं। आप ही वह कारण हैं जिस में से संसार उठता है और आप में ही वह विलीन हो जाता है, इस लिए आप अधिष्ठान हैं। आप जगत का आश्रय हैं। आप को नमस्कार!

साधक के लिए भी आप सर्वाश्रया हैं। उपासना करते समय केवल आप ही एक आश्रयण होतीं हैं। केवल आप में ही हम शरण जा सकते हैं। व्यवहार में भी जब साधक संबंधों में, वस्तुओं में, धन-

द्रव्य में आश्रय लेता है, वह पहचान जाता है, कि यह आश्रय पर्याप्त नहीं है, इन से मिलनेवाला सुख अनित्य है, शाश्वत नहीं। वह सोच-विचार करने लगता है, कि क्या कोई ऐसा आश्रय है, जहाँ शाश्वत सुखका अनुभव हो सके? वह देखता है, कि जिस में उस ने आश्रय लिया है, वह आश्रय एक कार्य है, जिस का कारण भी तो होगा। कारण मिलने पर, वह कारण भी कार्य ही होता है। ऐसे, कार्य से कारण, करते-करते वह पहुँचता है आदि कारण तक, आदि शक्ति, जिसका कोई कारण नहीं।हम कहते हैं कि वे कारण हैं, क्यों कि हम कार्य – जगत देखते हैं। पर वे कारण हैं भी, और नहीं भी हैं, क्योंकि जब हमारी बुद्धि उन में लीन हो जाती है, तब न कारण रहता है, और न कार्य। केवल एक तत्व रहता है, आत्मतत्व। आत्मतत्व में लीन होना ही सर्वाश्रय है, और सर्वाश्रया आप हैं।

हे देवी, आप अव्याकृत है, अप्रकट हैं, अपने-आप में ही हैं। अपने स्वातंत्र्य में आप सृष्टि करतीं हैं, आप पर सृष्टि करने का कोई निर्बंध नहीं है। आप सर्वश्रेष्ठ हैं, उत्कृष्ट हैं। आप आदि प्रकृति हैं, जगतों का मूलकारण, आदिकारण, इस लिए आप आद्या भी कहलातीं हैं - आदि शक्ति।

इस श्लोक में देवता, उसी शक्ति का वर्णन कर रहे हैं, उसी का इष्ट रूप से दर्शन करते हुए। स्तुति करते समय वे वह कह रहे हैं, जो वेदान्तमे बताया जाता है। वेदान्त में ब्रह्म-आत्म-ऐक्य स्थापित करते समय निर्गुण निराकार का उल्लेख आता है। आत्मतत्व के बारे में कहते हैं, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाववान् आत्मा, यह निर्गुण तत्व।

तो निर्गुण तत्व है, और जगत है। निर्गुण तत्व और जगत के बीच, माया संबंधन कड़ी है। मायाशक्ति से ही सारी सृष्टि होती है। जिस का वर्णन नहीं किया जा सकता, वह माया है। निर्गुण में देश, काल, परिस्थिति, वस्तु की सृष्टि कर जगत प्रस्तुत करनेवाली शक्ति को माया कहते हैं। जगत, जो दिखता है, वह कार्य है, जिसका कारण हम जानते नहीं। जब कोई समस्या हमारे सामने आती है, उस समस्या के कारणतक जाना आवश्यक होता है, ताकि हम उस समस्या का समाधान कर सकें। समस्या को समझे बिना कार्य करना, या निर्णय लेना उचित नहीं। इसी प्रकार हम देखते हैं कि हमारे जगत में सब कुछ ठीक नहीं चल रहा है। जो सुख आता है, उस का अंत हो जाता है। मैं अनुसंधान करने का निर्णय लेता हूँ। इस बात की पहचान हो जाती है कि विषयों में निरंतर परिवर्तन होता ही रहता है। उन से मुझे शाश्वत सुख नहीं मिल सकता। अगर मैं केवल अनित्य सुख से संतुष्ट हूँ, तो ठीक है। पर यदि मैं सोचता हूँ कि मुझे शाश्वत सुख का अधिकार है, केवल अनित्य सुख मुझे संतुष्ट नहीं करेगा, तब मैं जगत के कारणतक पहुँचने का प्रयत्न करता हूँ। समस्त जगतों का, ब्रह्माण्ड का कारण आप ही हैं।

वेदान्त में कारण कहते ही दो कारण आते हैं - निमित्त कारण और उपादान कारण। उदाहरण दिया जाता है घड़े का। घड़ा बनाने में कुम्हार निमित्त कारण है, और मिट्टी है उपादान कारण। कुम्हार अपनी होशियारी और कुशलता से घड़ा बनाता है। बनाने में मिट्टी का प्रयोग करता है, तो मिट्टी उपादान कारण है। ब्रह्म में सृष्टि होती है, तो निमित्त

कारण और उपादान कारण भिन्न नहीं होते। वेदान्त कहता है कि ब्रह्म निमित्त कारण भी, और उपादान कारण भी है। ब्रह्म अभिन्न निमित्तोपादान कारण है। ब्रह्म अपने-आप में ही सृष्टि करता है, अपने आप में ही सृष्टि धारण करता है, सृष्टि को अपने-आप में ही विलीन कर लेता है, और अपने-आप में ही समाहित है। उस को किसी अवलंबन या उपादान की आवश्यकता नहीं। वह स्वतंत्र है। इस शुद्ध वेदान्तिक सिद्धांत में हम धीरे-धीरे प्रवेश करते हैं। पुनः पुनः उस का श्रवण करने से उसमें विश्वास होने लगता है, और फिर वेदान्त का परोक्ष ज्ञान होने लगता है।

अभिन्न निमित्तोपादान कारण को समझने के लिए स्वप्नावस्था का उदाहरण दिया जाता है। नींद मे स्वप्न का अनुभव करने के उपरांत जब हम जागृत अवस्था में होते हैं, तब हम कह सकते हैं कि मैंने नींद में एक स्वप्न देखा। स्वप्न में जो परिस्थिति थी, वस्तुएँ थी, पात्र थे, जो सुख, दुःख, भय के अनुभव थे, उन सब की मुझे स्मृति है। नींद खुल गई और मैं पहचान सका कि वह तो केवल एक स्वप्न था। मेरे सिवा और कुछ नहीं था। पर स्वप्न में ऐसे लगता है, कि जो है, जो कुछ मैं अनुभव कर रहा हूँ, वह सब वास्तव में है ही। उस अनुभव में मैं भी एक अलग-सा कुछ होता हूँ। पता नहीं लगता कि मैं सृष्टि कर रहा हूँ। स्वप्न अवस्था में मैंने सृष्टि की, उस को स्वप्न में धारण किया और फिर विलीन किया। स्वप्न मेरे संस्कारों के अनुसार था। स्वप्न चैतन्य का एक प्रलंबन है, उस में जो कुछ होता है, उस का मेरे से अलग कोई अस्तित्व नहीं होता।

जैसे चैतन्य को स्वप्नावस्था में इतना प्रलंबन करने का सामर्थ्य है, तो ईश्वर को, जो मुक्त हैं, उन को बिना किसी अवलंबन या उपादान के, सारी सृष्टि प्रकट करने का सामर्थ्य होता है। तो ईश्वर सृष्टि का अभिन्न निमित्तोपादान कारण होते हैं। स्वप्न के अनुभवों में भौतिकता थी, पर साथ-साथ नींद खुलने पर मैं पहचान लेता हूँ कि वह स्वप्न मेरे ही चैतन्य का प्रलंबन था। मैंने उस को धारण किया, उस को घनता प्रदान की। ईश्वर चैतन्य में तो यह करने का सामर्थ्य है ही। इस लिए वह अभिन्न निमित्तोपादान कारण है, अर्थात्, ईश्वर-चैतन्य सृष्टि करता है। देवी, ईश्वर चैतन्य, अभिन्न निमित्तोपादान कारण हैं, ब्रह्म हैं, ब्रह्म शक्ति होकर आतीं हैं, माया शक्ति होकर तीनो गुणों को प्रकट करतीं है और सृष्टि करतीं हैं। देवी नानात्व प्रकट करतीं हैं, और फिर उसको अपने-आप में ही लीन कर लेतीं हैं। उपादान कारण होकर भी उन में कोई परिवर्तन नहीं आता। कुम्हार की मिट्टी खर्च हो जाती है, घड़ा बनाने के बाद, परंतु सृष्टि करने से भी देवी में कोई कमी नहीं आती। वे अपनी पूर्णता में हैं, अपने-आप में समाहित हैं, अव्याकृत हैं, अप्रकट हैं। हे देवी, आप को नमस्कार!

यस्याः समस्तसुरता समुदीरणेन
तृप्तिं प्रयाति सकलेषु मखेषु देवि।
स्वाहासि वै पितृगणस्य च तृप्तिहेतु-
रुच्चार्यसे त्वमत एव जनैः स्वधा च ॥७॥

यहाँ देवी के मंत्रात्मक रूपका उल्लेख आता है। जब कोई यजमान किसी देवता को संतुष्ट करके उन का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए यज्ञ

करता है, तब वह उस देवता को उद्दिष्ट करके, यज्ञ की अग्नि में सामग्री की आहुति देते समय ''स्वाहा'' शब्द का आदरपूर्वक स्पष्ट उच्चारण करता है। यजमान इस शब्द का अर्थ समझकर यह भाव रखता है, कि जिस द्रव्य को मैं समर्पित कर रहा हूँ, वह मेरा नहीं है। मैं आप के संतुष्ट्यार्थ अग्नि में आहुति डाल रहा हूँ, इस आहुति को कृपया आप स्वीकार कीजिए। यजमान उस सामग्री पर अपना अधिकार त्याग देता है। अग्नि हव्यवाहन है, उस हविष्यको देवता तक पहुँचाती है। देवता संतुष्ट होते हैं और यजमान उन का अनुग्रह प्राप्त करता है। श्राद्ध के समय ''स्वधा'' शब्द के स्पष्ट उच्चारण से पितृ-तर्पण होता है, वे तृप्त होते हैं, और आशीर्वाद देते हैं। देवता और पितृ, जो इंद्रियातीत हैं, उन के क्षेत्र में भी देवी कार्य सिद्ध करातीं हैं, ''स्वाहा'' और ''स्वधा'' शब्दों द्वारा, जो कि वैदिक मंत्र हैं, और जो उनके ही स्वरूप हैं।

देवी ज्ञानस्वरूपिणी हैं। ज्ञान का प्रकटन पहले वेद रूप से हुआ है। वेदों के मंत्र, वाक्य,शब्द और अक्षर, सब में दिव्यता है। सब की अपनी शक्ति, अपना प्रभाव और सामर्थ्य है। ''स्वाहा'' और ''स्वधा'' शब्द जड़ और अर्थहीन नहीं हैं। वे दिव्यता प्रभावित हैं और उन में निर्धारित कार्य को सिद्ध करने का सामर्थ्य है।

उच्चारण वाणी के क्षेत्र में आता है। वाणी चितिशक्ति का ही, देवी का ही प्रकटन है। वाणी का बहुत अधिक महत्व है। व्यावहारिक स्तर पर, वाणी का दुरुपयोग न करना, वाणी-संयम का पालन, वाणी का केवल सदुपयोग, यथायोग्य प्रयोग, यह चितिशक्ति की महत्वपूर्ण आराधना है। वाणी देवी सरस्वती का प्रसाद है।

जब शब्दों का उच्चारण होता है, याने वाणी जब उच्चारण के स्तरपर आती है, उसे वैखरी कहते हैं। वाणी के चार स्तर होते हैं। प्रकट वाणी को, याने उच्चारित वाणी को वैखरी कहते हैं। यह वाणी का चौथा स्तर है। वाणी का तीसरा स्तर है - मध्यमा। यह वैखरी से सूक्ष्म है। इस स्तर पर उच्चारण से पहले श्वास लिया जाता है और प्राणसंचार होता है। वाक् की इंद्रिय, जो दिव्यशक्ति है, अपना कार्य करने की तैयारी करती है। मध्यमा से भी सूक्ष्म है पश्यन्ती वाणी, जो वाणी का दूसरा स्तर है। चैतन्य में बहुत ज्ञान होता है। पश्यन्ती स्तरपर, वाणी के द्वारा ज्ञान प्रकट करने की इच्छा होती है, और अब उस ज्ञान को प्रकट करने का प्रसंग भी आता है। इच्छा बुद्धि के स्तर पर होती है, और इस इच्छा के प्रति मन में विचार भी आता है। यहाँ वाणी व्याकृत नहीं हुई होती; अव्याकृत होती है। पश्यन्ती से भी और सूक्ष्म होती है परावाणी, जो वाणी का पहला स्तर है। इस स्तर पर शुद्ध चैतन्य में स्पंदन होता है, जिसके पश्चात् पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी का क्रम बनता है। स्पंदन के पूर्व, जब वाणी साक्षी में होती है, यह परावाणी चितिशक्ति से अभिन्न है। अतएव वाणी चितिशक्ति का ही प्रकटन है।

या मुक्तिहेतुरविचिन्त्यमहाव्रता त्व-
मभ्यस्यसे सुनियतेन्द्रियतत्त्वसारैः।
मोक्षार्थिभिर्मुनिभिरस्तसमस्तदोषै-
र्विद्यासि सा भगवती परमा हि देवि ॥८॥

जब साधारण उद्देश्य की अभिलाषा रहती है, तब साधारण व्रतों से वह सिद्ध हो सकता है। परंतु यदि कोई मुक्ति चाहता है, तब

भीषण व्रतका आचरण करना पड़ता है, और सर्वतो भावेन उस में निमज्जित होना पड़ता है। ऐसा भीषण व्रत महाव्रत कहलाता है। यह महाव्रत देवी का एक और रूप है। त्याग, तपस्या, नियमों को अपनाना इस व्रत में सम्मिलित होता है। महाव्रत का आचरण करनेवाले मोक्षार्थी होते हैं, जिन में मोक्षकी अभिलाषा सदैव जगी रहती है। आत्मस्वरूप का ज्ञान उन का लक्ष्य होता है। केवल इस ज्ञान से ही मुक्ति मिलती है, मोक्ष मिलता है, और यह ज्ञान प्राप्त होता है श्रवण से।

ज्ञान दो प्रकार का होता है। परोक्ष ज्ञान और साक्षात अपरोक्ष ज्ञान। परोक्षज्ञान शास्त्र-श्रवण से, शास्त्र पढ़ने से प्राप्त होता है। ऐसे पुनः पुनः करने से वेदान्त के सिद्धान्त दृढ होते हैं। साक्षात् अपरोक्ष ज्ञान की तैयारी में, वेदान्त श्रवण, पठन के साथ-साथ भक्ति, आराधना, उपासना और स्पष्ट चिंतन अनिवार्य है। वेदान्त चिंतन से प्राप्त ज्ञान को स्थिर बनाने के लिए, ऐसे तत्वसार साधक इन्द्रिय संयम का प्रयास करते हैं। वे शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान और मुमुक्षा, इन योग्यताओं को विचारपूर्वक, मननपूर्वक व्यवहार में लाते हैं। फिर मुमुक्षा सिद्ध होने पर जो सहज ज्ञान प्राप्त होता है, उसे साक्षात् अपरोक्ष ज्ञान कहते हैं। अपरोक्ष ज्ञान की प्राप्ति में श्रवण का बहुत महत्व है; शास्त्र श्रवण, महावाक्य श्रवण, ब्रह्म-आत्म-ऐक्य स्थापित करने वाले ये महावाक्य, जैसे कि ''अहं ब्रह्मास्मि'' इत्यादि।

महाव्रत के पालन के कारण ऐसे साधकों को ज्ञान धारण करने का अधिकार प्राप्त होता है। इष्टदेवता की उपासना करने के कारण उनके दोष अस्त हुए होते हैं, उन का अंतःकरण शुद्ध हुआ होता है।

उन की इंद्रियाँ पूरी तरह से वश में होतीं हैं। ऐसे साधकों के द्वारा देवी अभ्यस्त होतीं हैं। गुरु इन को महावाक्य का उपदेश देते हैं, और यह उपदेश शिष्य ग्रहण करते हैं। शिष्य महावाक्यको अर्थपूर्वक समझते हैं। जिन में इस का तात्पर्य ग्रहण करने की शक्ति होती है, उन को देवी द्वारा ज्ञान प्राप्त होता है; देवी स्वयं उनको ज्ञान प्रदान करतीं हैं। श्रुति कहती है ''ज्ञानादेव तु कैवल्यं'' अर्थात्, ज्ञान से ही मुक्ति प्राप्त होती है। जब आत्मस्वरूप का ज्ञान प्राप्त होता है, उस को लेकर कुछ करना नहीं होता, जैसे कि जब उपासना संबंधी मार्गदर्शन किया जाता है, तब उपासना करनी होती है। लेकिन साक्षात् अपरोक्ष ज्ञान होते ही, मुक्ति मिल जाती है । परन्तु वह ज्ञान प्राप्त करने के लिए बहुत अभ्यास करना पड़ता है, तप करना पड़ता है। अपने ही आत्मस्वरूप को जानना ही मुक्ति है। यह किसी क्रिया का परिणाम नहीं है।

मुक्ति के बारे में, व्याख्या के तौरपर एक कथा उपयुक्त है जिस का शीर्षक है, ''दसवाँ वैरागी''। दस वैरागी एक आश्रम में साथ रहते थे। बहुत तपस्या करते थे। उन का मनोरंजन केवल यही था – दूसरे आश्रमों के भंडारों में जाना। एक दिन ऐसा एक निमंत्रण आया। सारे साथ निकल पड़े। भंडारा एक छोटीसी नदी के पार था। नदी को शीघ्र गति से बहते हुए देखकर उन्हें कुछ संकोच हुआ। आखिर पैदल नदी पार करने का निर्णय लिया। एक-दूसरे से पूछा, कि कुल मिलाकर उन की अपनी संख्या कितनी है। सबने उत्तर दिया कि वे दस व्यक्ति हैं। अब हाथ पकड़ कर, शृंखला बनाकर धीरे से पानी में उतरे, धैर्य रखकर, अत्यंत सावधानी से नदी पार की। दूसरे तट पर पंक्ति बनाकर खड़े हो गए, यह निश्चित करने के लिए, कि दस के दस पार हुए की

नहीं। ठंडसे ठिठुर रहे थे। एकने गिना। उस के सामने नौ व्यक्ति थे। एक से नौ तक गिना। कहा कि केवल नौ हैं। घबड़ा गया। दूसरे ने गिना। वैसे ही गिना। सब के मन में प्रश्न आया, कि दसवाँ व्यक्ति कहाँ है? पानी में देखा। कुछ भी नहीं मिला। क्या करते? उँची आवाज में रोने लगे। वहाँ एक वृद्ध व्यक्ति आया, उस ने उन के दुःख का कारण पूछा। सब ने बताया कि उनके दल का एक व्यक्ति खो गया है। देखनेवाले के सामने तो दस व्यक्ति थे। उस ने उन को ऐसे स्थान पर खड़ा किया जहाँ प्रकाश था, और उन को एक-एक कर गिना। दस के दस पूरे तो थे ही! वृद्ध पुरुष ने उन को चिंतामुक्त करा दिया, गिननेवाले वैरागी से यह कहकर, कि दूसरे नौ तो तुमने गिन लिए। दसवें व्यक्ति तो तुम ही हो। ''त्वं दशमोसि''. तद्क्षण गिननेवाला वैरागी अपनी भ्रांति से मुक्त हुआ, उस को ज्ञान हुआ, कि मैं तो वहीं था। मैं कभी खो नहीं गया था। इस कथा की सार-वस्तु यह है, कि वह व्यक्ति, जिस को उन्हों ने खोया हुआ समझा था, वह गिनने की क्रिया से नहीं मिला। वह मिला ज्ञान से। उस ज्ञान से यह प्रमाणित हुआ कि जिस को खोया हुआ समझा था, वह गिननेवाला स्वयं था। ज्ञान होने तक ऐसा हो रहा था, जैसे कि वह अपने-आप को खोज रहा है। इस प्रसंग में केवल खोज की क्रिया खोए हुए व्यक्ति को दर्शित करने में सिद्ध नहीं हो सकी। मुक्ति के विषय मे भी, केवल आत्मस्वरूप के ज्ञान से ही मुक्ति प्राप्त होती है, क्रिया से नहीं।

आत्मज्ञान प्राप्ति के पश्चात् व्यक्ति कह सकता है, कि यह मेरा स्वरूप है, आत्मज्ञान प्राप्ति से पूर्व भी मेरा यही स्वरूप था, अभी भी

यही है, और सदा यही रहेगा। पता नहीं कैसे मैं अपने-आप को केवल जीव समझ बैठा था। आत्मज्ञान प्राप्ति के पश्चात् मैने कोई नई वस्तु उपलब्ध नहीं की, मैने केवल अपना स्वरूप जान लिया। ऐसे अनुभव के कारण कहा जा सकता है, कि मुक्ति क्रिया का परिणाम नहीं है।

परंतु आत्मज्ञान प्राप्ति से पूर्व, साधक की सोच यह होती है, कि मैं शिवस्वरूप नहीं हूँ; मैं जीव हूँ। उस में शिवस्वरूप बनने की इच्छा होती है, क्योंकि वह अपने-आप को शिवस्वरूप से भिन्न मानता है। यह इच्छा सिद्ध होने का कारण है, ज्ञान, विद्या। यह ज्ञान जो मुक्ति का कारण है, यह साधारण ज्ञान नहीं है। यह आत्मज्ञान है। यह देवी भगवती ही हैं। आप को नमस्कार!

शब्दात्मिका सुविमलर्ग्यजुषां निधान-
मुद्गीथरम्यपदपाठवतां च साम्नाम्।
देवी त्रयी भगवती भवभावनाय
वार्ता च सर्वजगतां परमार्तिहन्त्री ॥९॥

देवी की स्तुति को अवस्थित रखते हुए देवता कह रहे हैं कि स्वच्छ, निर्मल ऋग्वेद और यजुर्वेद का आधार आप ही हैं, और सामवेद, जिस के मंत्रों का उच्चारण भी किया जाता है, और जो गाए भी जाते हैं, और सुनने में अति रमणीय और सुरीले होते है, उस का भी अधिष्ठान आप हैं; आप शब्दस्वरूपिणी हैं। देवी को देवता ''त्रयी'' कहकर पुकार रहे हैं, इस अर्थ से, कि वे देवी को तीनों वेद स्वरूपिणी मान रहे हैं।

शुद्ध ज्ञान का प्रकटन वेदों द्वारा हुआ है। वेद हमारे धर्मग्रंथ हैं, आधाररूप शास्त्र हैं। वे अपौरुषेय हैं, याने उन की रचना पुरुषों द्वारा नहीं हुई है। वेदों के शुद्ध ज्ञान के शब्द, मंत्र ऋषियों ने अनुभव किए, समझे, और वैखरी वाणी से उच्चारित किए। वैदिक ज्ञान साधारण ज्ञान नहीं है, शुद्ध चैतन्य उन का विषय है। चितिशक्ति वह अधिष्ठान है जिस में से वेद उत्पन्न हुए। वैदिक मंत्र देवी का ही एक और रूप है; देवी शब्दात्मिका, शब्दस्वरूपिणी हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद देवी के, चितिशक्ति के स्वरूप हैं, उन का शरीर है। देवता, देवी को वेदमयी, तीनों वेद स्वरूपिणी, ''त्रयी'' मानकर, उन का स्मरण इन तीनों रूपों से कर, उनकी भक्तिपूर्वक स्तुति करते हैं।

देवी को भगवती कहा है, भग-सम्पन्न माना है। लोगों के जीवन में आर्थिक समृद्धि लाने के लिए, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ये पुरुषार्थ सिद्ध करने का माध्यम देवी हैं। संसार को बढ़ाने के लिए, विश्व के विकास के लिए आप आजीविका हैं, और संपूर्ण जगत के दुःख हनन करनेवाली भी आप ही हैं। हे देवी, आप को नमस्कार!

मेधासि देवि विदिताखिलशास्त्रसारा
दुर्गासि दुर्गभवसागरनौरसङ्ग।
श्रीः कैटभारिहृदयैककृताधिवासा
गौरी त्वमेव शशिमौलिकृतप्रतिष्ठा ॥१०॥

इस श्लोक में देवता कहते हैं कि, जिस शक्ति से समस्त शास्त्रों के सार का ज्ञान होता है, वह मेधाशक्ति आप ही हैं। कैटभ असुर के शत्रु, भगवान विष्णु का हृदय, केवल आप ही का निवास है, वहाँ

केवल आप विराजमान हैं। और भगवान चंद्रशेखर की अर्धांगिनी गौरी भी आप हीं हैं।

जिन के द्वारा मन के चार कार्य होते हैं, उन को अंतःकरण चतुष्टय कहते हैं। यह हैं मानस, बुद्धि, चित्त और अहंकार। इस श्लोक में उल्लेख आता है मेधा का। मेधाशक्ति वह मानसिक शक्ति है जिस से शास्त्रीय ज्ञान का तात्पर्य ग्रहण होता है, समझ में आता है। वह ज्ञान जिस का श्रवण गुरु करवाते हैं, जो शास्त्र-पठन, पारायण, अध्ययनसे प्राप्त होता है, उस का प्रारंभ में केवल शब्दार्थ, सीधा ऊपरी अर्थ ही समझ में आता है। शास्त्रीय ज्ञान का तात्पर्य, सार ग्रहण करना साधक का एक पुरुषार्थ होता है। शास्त्रीय ज्ञान सूक्ष्म विषय होने के कारण, गुरु और शास्त्र, उपदेश द्वारा, साधक के मन को उस ज्ञान की ओर ले आते हैं। साधक के मन को उसी दिशा में मुड़े रखने के लिए और भी उपदेश की आवश्यकता होती है। इस लिए व्याख्या देकर, शिक्षा देकर मार्गदर्शन किया जाता है। इस स्तर तक गुरु और शास्त्र के शब्दों का सामर्थ्य रहता है, और साधक ज्ञान ग्रहण कर सकता है। परन्तु शब्द साधक को इस स्तर से आगे नहीं ले जा सकते। अब शास्त्र का तात्पर्य, सार पकड़ने के लिए मेधाशक्ति की आवश्यकता होती है। मेधाशक्ति शास्त्रीय ज्ञान की सूक्ष्मता ग्रहण और धारण करने के लिए प्रणोदन देती है। यह मेधाशक्ति देवी भगवती ही हैं। देवी सरस्वती हैं। सारे शास्त्रों का ज्ञान उन को है। साधक, देवी की आराधना सरस्वती रूप से करता है, ताकि वे उस पर प्रसन्न हों, उस पर अनुग्रह करें, उस में उन की कृपा से मेधा उत्पन्न हो, उसे

शास्त्रों के सार का ज्ञान प्रदान हो, और शास्त्रों में जो संकेत किया गया है, वह भी उस के समझ में आए। मेधा, देवी सरस्वती का एक रूप है। मेधावी व्यक्ति में व्यावहारिक स्तर पर भी संकेत समझने की क्षमता आती है।

नाम-रूप का जगत हमें दिखता है। देवी ही जगत को प्रस्तुत करती हैं। जगत का अधिष्ठान देवी चितिशक्ति हैं। जगत के नाम-रूप वाले विषय हम आसानी से देख सकते हैं, पर उन के अधिष्ठान को, मूल-स्वरूप को पहचानना आसान नहीं है।

देवता यह भी कहते हैं, कि आप की प्राप्ति अत्यंत कठिन तो है, पर इस भवसागर के पार ले जानेवाली नौका आप ही हैं।

देवता देवी को असङ्गा भी कहकर पुकारते हैं। देवी, चितिशक्ति अद्वितीय हैं, एकमात्र शक्ति हैं। जब देवी से स्वतंत्र और कुछ है ही नहीं, जब संपूर्ण जगत देवी में ही समाहित है, तब उन की आसक्ति कहाँ हो सकती है ? वे तो सङ्गरहित हैं। वे किसी और शक्ति का सहाय नहीं लेती, क्योंकि और सारी शक्तियाँ उन के ही विभिन्न रूप-प्रकटन हैं। जो एकमात्र शक्ति हैं, उन को नमस्कार।

देवता देवी को लक्ष्मी और गौरी कहते हैं। वे घोषणा करते हैं कि, कैटभ असुर जिन को अरि समझता है, उन भगवान विष्णु के हृदय में आप लक्ष्मी रूप से विराजमान हैं। उन के हृदय में केवल आप निवास करतीं हैं। और गौरी भी आप ही हैं। आप, गौरी रूप में अर्धांगिनी हैं चंद्रमौली ईश्वरकी। चंद्रमौली याने अर्धचंद्र जिन की जटा का आभूषण है, अर्थात्, शिवजी।

देवी की आराधना अनेक रूपसे होती है - देवी दुर्गा की, लक्ष्मी की, सरस्वती की, गौरी की। हम देवी भगवती को इन सब देवियों में देखते हैं। इन सब देवियों में एकमात्र चितिशक्ति कार्य करती है। ये सारी देवियाँ, शक्तियाँ, देवी भगवती की विभूतियाँ हैं, चितिशक्ति के विभिन्न रूप-प्रकटन। हर देवी के रूपसे शक्ति की ही उपासना होती है।

साधक उस मंत्र का जप करता है, जो गुरु उसे उस के स्वभाव के अनुसार देते हैं। इष्टदेवता भिन्न होते हैं, और साधक अपने समय का अपव्यय नहीं करता मूल्यांकन करने में कि कौनसा मंत्र प्रवर है, और कौन सा अवर, क्योंकि वास्तव में ऐसा कुछ होता ही नहीं। निष्ठासे जप करना होता है, दृढ़ विश्वास पूर्वक, कि यह मंत्र मेरे लिए हितकारी है। फलश्रुति भी रहती है। प्रत्येक देवता के स्तोत्र में उसी देवता को सर्वश्रेष्ठ बताया जाता है। यदि ईश्वर का स्तोत्र हो, तो उस में ईश्वर ही सर्वश्रेष्ठ है, अन्य देवता क्षुद्र हैं, ताकि जो ईश्वर की आराधना कर रहा हो, उस के अवचेतन मन के स्तरपर भी निष्ठा बने। विष्णु परख स्तोत्र हो तो उस में विष्णु सर्वश्रेष्ठ बताए जाते हैं। इन में कोई विरोध नहीं है; न इन में तुलना है। यह समझना होता है, कि इन स्तोत्रों की रचना किस स्तरपर और किस प्रयोजन से की गई है। उद्देश्य रहा है, साधक की निष्ठा को दृढ़ करना। यदि साधक भाव से, तीव्रतापूर्वक उस तत्व को स्वीकार करे तो उस की प्रगति होती है, और वह उस नाम-रूप के परे जा सकता है। भगवान के नाम रूप के

परे जाना कोई साधारण बात नहीं है। हमारी कमज़ोरी है अपने-आप को रूप में ही देखना। इस बात का इतना अध्यास होता है, कि मैं एक व्यक्ति हूँ, जो है यह शरीर ही है। जब यह अध्यास इतना प्रबल होता है, तब भगवान को निराकार में देखना बहुत कठिन है। इस लिए, क्योंकि भगवान को सगुण-साकार रूप में देख उनसे सम्पर्क करना आसान है, इस लिए भगवान की आकृति रखी जाती है, उन्हें सगुण-साकार रूप में पूजा जाता है। यह अनुपयुक्त समझ है, कि देवता की आकृति में एकाग्रचित्त होकर उपासना करना अवर उपासना होती है। स्वयं भगवान के दृष्टिकोण से तो निर्गुण-निराकार आराधना और सगुण-साकार आराधना, दोनों बराबर हैं! भगवान बस इतना चाहते हैं कि साधक अपने-आप को केवल स्थूल शरीर ही मानना छोड़ दे, और जिन भौतिक संबंधों में वह बद्ध है, उन से बाहर निकल आए। उपासना का यही लक्ष्य है। उपासना इष्टदेवता की शक्ति की ही हो रही होती है, जागरण चितिशक्ति का ही हो रहा होता है। देवता की आकृति की हर एक मुद्रा का अर्थ होता है। मुद्रा पर मनन करने से, जब सम्पर्क जुड़ जाता है और तन्मयता आती है तब एक-एक मुद्रा चिन्मय होने लगती है, अर्थात्मक होने लगती है। जैसे कि भय हो, तो अभय-मुद्रा अभय प्रदान करती है। भय का नाश हो जाता है।

ईषत्सहाससममलं परिपूर्णचन्द्र-
बिम्बानुकारि कनकोत्तमकान्तिकान्तम्।
अत्यभ्दुतं प्रहृतमात्तरुषा तथापि
वक्त्रं विलोक्य सहसा महिषासुरेण ॥११॥

इस श्लोक में देवता महिषासुर - वध के प्रसंग को याद कर रहे हैं। महिषासुर का वध देवी के दिव्य हाथों हुआ ही था। देवता कह रहे हैं कि, हे देवी, मंद मुसकान से सुशोभित आप का मुखारविंद निर्मल, पूर्ण चंद्रमा के बिम्ब के अनुरूप दीप्त है, और उत्तम स्वर्ण-समान मनोहर कान्ति से कमनीय है। देवी के ऐसे सौम्य रूप का दर्शन करते समय, देवताओं के स्मरण में आता है, कि युद्ध आरम्भ होनेसे पहले भी जब उन्हों ने देवी को देखा था, तब भी देवी का उज्ज्वल मुखमण्डल वैसे ही कान्तिमय था। इस लिए देवता विस्मयपूर्वक कह रहे हैं कि यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है, कि देवी के इस विशेष, दिव्य, लावण्यमय सौंदर्य के बावजूद, उनको देखते ही, महिषासुर क्रोध से कम्पित हुआ और उस ने देवी के उस शांत और कोमल मुखमण्डल पर प्रहार करने का प्रयास किया।

महिषासुर का इस अनियंत्रित ढंग से उत्तेजित होना, और देवी पर प्रहार करना, उसके घोर तमोगुण का चिन्ह था। उस के अन्दर रजोगुण अधिक मात्रा में था, परन्तु तमोगुण की प्रबलता थी। इस कारण उस की विचारशक्ति भ्रष्ट हो गयी थी। उस ने देवी की विद्यमानता-मात्र को चुनौती समझकर, संघर्ष के लिए ललकार मानकर, बिना सोचे समझे, बिना सोच-विचार किए, सहसा देवी पर प्रहार किया। क्या पता उस के मन में किस प्रकार के विचार आए होंगे? उस ने सोचा होगा, कि देवी के होने से उस का अपना अधिकार कम हो जाएगा। इस आशंका से भी बढ़कर, देवी को देख उसके मन में संकट का भय उत्पन्न हुआ होगा, जिस के कारण उस ने वह हिंसक कार्य किया होगा।

दृष्ट्वा तु देवि कुपितं भ्रुकुटीकराल-
मुद्यच्छशाङ्कसदृशच्छवि यन्न सद्यः ।
प्राणान्मुमोच महिषस्तदतीव चित्रं
कैर्जीव्यते हि कुपितान्तकदर्शनेन ॥१२॥

महिषासुर का देवी पर ऐसा प्रहार, आक्रमण होते ही, देवी भगवती अत्यंत कुपित हो गईं। क्रोध से उन का शांत, लावण्यमय मुखारविन्द अब उदयकाल के चन्द्रमा की भाँति लाल हो उठा। उन की भौहें तन गईं और उन का चेहरा विकराल हुआ। देवता कहते हैं, कि देवी का ऐसा चेहरा देख महिषासुर ने उसी क्षण अपने प्राण नहीं त्यागे, यह अति विचित्र है। देवी को ऐसे क्रोधित देखने के पश्चात्, भला कौन जीवित रह सकता है?

चितिशक्ति जब क्षुब्ध होती है, उस समय परिस्थिति अस्तव्यस्त हो जाती है। रणभूमि में भी, उस समय, जब देवी क्रोध में आईं, तब ऐसा ही हुआ होगा। आश्चर्य की बात तो यह है, कि महिषासुर ऐसी अवस्था सहन कर सका, और उस भयंकर खतरे की भीतिसे ही उस के प्राण तुरंत निकल नहीं गए। हे देवी, आप को नमस्कार!

देवि प्रसीद परमा भवती भवाय
सद्यो विनाशयसि कोपवती कुलानि ।
विज्ञातमेतदधुनैव यदस्तमेत-
न्नीतं बलं सुविपुलं महिषासुरस्य ॥१३॥

अब प्रार्थना- हे देवी, आप हम पर प्रसन्न हों और जगत का

पालन करें। आप संतुष्ट होतीं हैं, तो सब का उद्धार करतीं है। आप रुष्ट होतीं हैं, तो आप केवल दोषी को ही नहीं, परन्तु उस के पूरे परिवार को नष्ट कर देती हैं। देवता कहते हैं कि, हम ने रण-भूमि पर यह होते हुए देखा है, जब आप ने महिषासुर का और उस की विशाल सेना का सर्वनाश कर डाला। उस के पूरे कुल का विनाश हो गया।

देवी क्षुद्र शक्ति नहीं हैं, चितिशक्ति हैं, प्रचंड शक्ति हैं। वे भुक्ति और मुक्ति भी प्रदान करतीं हैं, और दुःखद परिस्थिति भी खड़ी कर देतीं हैं। उन की अवहेलना होने पर नाश होता ही है। बिजली भी, जो एक प्रकार की शक्ति है, तब लाभदायक होती है, जब उस का सही तरह से प्रयोग किया जाता है। उसके प्रयोग में असावधान या लापरवाह होने से, विद्युत झटका लग सकता है, और विनाशकारी आग भी लग सकती है। अगर बिजली के साथ ऐसा हो सकता है, तो चितिशक्ति का क्या कहना? चितिशक्ति तो प्रचंड शक्ति है।

जब तक शक्ति-संपन्नता न हो, तब तक शिवप्राप्ति नहीं हो सकती। जब साधक अपने इष्ट देवता का नाम-रूप से स्मरण कर जप करता है, ध्यान करता है, तब जागरण शक्ति का ही हो रहा होता है, उपासना शक्ति की ही हो रही होती है। उपासना-पास बैठना। हर देवता की शक्ति होती है। नाम-रूप राम या कृष्ण, तो शक्ति विष्णु-शक्ति, लक्ष्मी। नाम-रूप शिवजी, तो शक्ति शिव-शक्ति, पार्वती। परंतु शक्ति एक ही है। इस शक्ति का आवाहन होकर अवहेलना नहीं होनी चाहिए। अत्यंत आदर और सावधानी की आवश्यकता होती है। देवी चितिशक्ति जगत्जननी हैं। यदि साधक की यह भावना हो,

कि हे देवी,मैं आप ही का हूँ, मैं आप के शरण में आया हूँ, और ऐसी भक्ति से, विनम्रता से, प्रार्थनापूर्वक वह शक्ति का जागरण करे, तो देवी उस को सुरक्षा देतीं हैं, उसका मार्ग-दर्शन करतीं हैं। यदि शक्ति का जागरण हठपूर्वक किया जाता है, तब परिणामी परिस्थितियों का सामना करना कठिन हो सकता है।

यहाँ पर महिषासुर ने देवी की, शक्ति की अवहेलना की, तब उस का सर्वनाश हुआ।

ते सम्मता जनपदेषु धनानि तेषां
तेषां यशांसि न च सीदति धर्मवर्गः।
धन्यास्त एव निभृतात्मजभृत्यदारा
येषां सदाभ्युदयदा भवती प्रसन्ना ॥१४॥

अब पुनः देवी के सौम्य रूप का स्मरण कर के देवता इस बात को याद करते हैं, कि देवी व्यवहार में भी हम पर कैसे अनुग्रह करतीं हैं। देवी जब प्रसन्न होतीं हैं तब वे अभ्युदय, मंगलता प्रदान करतीं हैं। जो व्यक्ति देवी की नियमित रूप से आराधना करते हैं वे देवी की प्रसन्नता और उन के अनुग्रह का पात्र बन जाते हैं। ऐसे व्यक्ति सुशील और शिक्षित होते हैं। वे धन्य कहलाते है और वे अपने प्रांत में, राज्य में, कार्यक्षेत्र में सम्मानित होते हैं, आदरणीय माने जाते हैं। उन का धन, यश सुरक्षित रहता है। जब परिवार का एक भी व्यक्ति देवी की आराधना कर देवी को प्रसन्न करता है, तो उस के पूरे परिवार को उस आराधना का फल प्राप्त होता है। उस के बच्चों में भी भक्ति और सभ्यता के संस्कार उत्पन्न होते हैं। इन संस्कारों के कारण वह भी,

और उस के बच्चे भी अपनी परंपरागत प्राप्त धर्म-कार्य की प्रथा निष्ठापूर्वक, श्रद्धा, भक्ति, शरणागति सहित जारी रखते हैं, और उस परम्परा को आगे बढ़ाते हैं। ऐसे परिवारों की स्त्रियाँ, संतान और सेवक, सब धन्य माने जाते हैं। उनके मित्र -बाँधवों की संख्या बढती है। जो व्यक्ति देवी की प्रसन्नता और उन के अनुग्रह का पात्र बन जाते हैं, उन में ये लक्षण दिखाई देते हैं। हे दवी, आप को नमस्कार!

धर्म्याणि देवि सकलानि सदैव कर्मा-
ण्यत्यादृतः प्रतिदिनं सुकृती करोति।
स्वर्गं प्रयाति च ततो भवतीप्रसादा-
ल्लोकत्रयेऽपि फलदा ननु देवि तेन ॥१५॥

देवगण कहते हैं कि हे देवी, जिस व्यक्ति पर आप प्रसन्न रहतीं हैं, जो आप के अनुग्रह का पात्र बना है, वह व्यक्ति अपना नित्यकर्म, उपासना इत्यादि भी, और नवरात्रि जैसे अन्य विशेष धार्मिक कार्य भी, आप ही की कृपासे, अत्यंत आदरपूर्वक, भक्ति और शरणागत भाव से करता है। यह कार्य जो उस-को परम्परागत प्राप्त हुए होते हैं, उन को जारी रखने में उसका दृढ़ विश्वास रहता है। वह मानता है कि इन का करना उस के अपने, और उस के पूरे परिवार के लिए कल्याणकारी है। ऐसा व्यक्ति धन्य कहलाता है। संपूर्ण जीवन जीकर शरीर का त्याग करने पर, यदि वह मुक्ति को प्राप्त नही हुआ, तो देवी चितिशक्ति उस को अच्छी गति प्राप्त करातीं हैं। वह स्वर्ग को प्राप्त होता है, उस की दुर्गति कभी नहीं होती। उस को अगले जन्ममें ऐसा शरीर मिलता है, ऐसे परिवेश मिलते हैं, जिन में वह और भी अच्छी साधना कर सके, और उस की उत्तरोत्तर प्रगति होती है।

रमण महर्षि और उन के एक भक्त के बीच हुई एक घटना स्मरण में आती है, जो चितिशक्ति के ऐसे रक्षण का एक प्रभावशाली दृष्टांत है। इस युग में ब्रह्मनिष्ठ कहलाने की योग्यता रमण महर्षि में थी। ऐसे ब्रह्मनिष्ठ और भी हैं, पर चितिशक्ति की इच्छा, कि यह उदाहरण देवी ने हमारे सामने रखा। प्रारब्धवश, सोलहवे साल में ही रमण महर्षि को आत्मसाक्षात्कार हुआ। वे इतने अलिप्त थे, कि वे अपने में ''मैं'' कहने का अधिकार भी नहीं रखते थे। अपने-आप के बारे में वे कहते थे, कि भगवान ऐसे कर रहे हैं, भगवान वैसे कर रहे हैं। वे अपना आत्मस्वरूप जानते थे, शरीर, मन, जो करे, सो करे। एक दिन उन का एक अच्छा भक्त उन के पास आया। रमण महर्षि के चरणों में गिरकर रोने लगा यह कह कर, कि मैं भगवान रमण महर्षि की सन्निधि में बारह साल से हूँ, साधना कर रहा हूँ, पर ऐसा लगता है कि कुछ प्रगति नहीं हो रही है। मन अभी भी बहुत विचलित है। अब क्या होगा? वह अत्यंत व्याकुल था। आगे उस ने कहा, कि अगर वह उसी दशा में रहा, तो शरीर-त्याग पश्चात्, निश्चत् रूप से वह नर्क पहुँच जाएगा। इस आशंका से वह अत्यंत चिंतित हो रहा था, और रो रहा था। उस की यह अवस्था देखकर रमण महर्षिने सहसा उस से कहा, कि यदि भविष्य में ऐसा हुआ, तो वह भक्त जिस नर्क में होगा, भगवान, याने रमण महर्षि, आकर उसे वहाँ से निकालेंगे। कैसा विलक्षण आश्वासन था यह। रोमाञ्च होता है, सुनकर। शरणागत भक्त को यह आश्वासन मिला। भगवान रमण महर्षि की शक्ति ने यह आश्वासन दिया; गुरुशक्ति ने भक्त को यह आश्वासन दिया। शब्द

भगवान रमण के, परन्तु इस का यह अर्थ नहीं, कि वे, याने रमण महर्षि, भक्त को नर्क से निकालेंगे, ऐसी सोच नहीं कि 'मै हूँ ना, देख लूँगा', क्योंकि उन में कोई अहंकार नहीं था।

एक बार देवी के, चितिशक्ति के शरण में जाने से, चितिशक्ति साधक का त्याग नहीं करती। साधक को पता भी नहीं होता कि मुक्ति क्या है। उसे मुक्तिमार्ग का कोई ज्ञान नहीं होता, किस दिशा में आगे बढ़ना है, यह पता नहीं होता, और कभी-कभी असावधानी के कारण वह भटक भी जाता है। परन्तु देवी उसका रक्षण करती हैं। अपने अनुभव और अपनी मुक्ति के लिए जीव बहुत बार जन्म लेता है; चितिशक्ति, गुरुशक्ति शरण्य भक्त का मुक्ति तक साथ देती है। यह आश्वासन हमें दिया गया है।

इस श्लोक में देवगण बताते हैं, कि देवी अपने भक्त का रक्षण तीनों लोकों में करती हैं। हे देवी, आप को नमस्कार!

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदाऽऽर्द्रचित्ता ॥१६॥

इस श्लोक में देवता, देवी को करुणामयी, जगत्जननी रूप से पहचानते हैं। जब कोई भक्त अपने-आप को दुःखद परिस्थिति में पाता है, वह भयभीत हो जाता है। न ही वह स्पष्ट विचार कर पाता है, और न ही वह कोई बात स्पष्ट समझ सकता है। उस पर दूसरोंकी दी

हुई सलाह का भी कोई प्रभावशाली परिणाम नहीं होता। ऐसी अवस्था में, उस का प्रार्थना करना स्वाभाविक है। वह अपनी प्रार्थना रखता है, उस शक्ति की चरणों में, जो उस के भय को हटा सकती है और उस को उस संकट में से निकाल सकती है। दुर्गा सप्तशती के प्रथम चरित्र में आता है, कि ब्रह्माजी ने भी, भयानक असुर मधु और कैटभ को देखने पर देवी से श्रद्धापूर्वक प्रार्थना की, उनकी स्तुति की। फलतः मधु और कैटभ का विष्णुजी द्वारा वध हुआ। वैसे ही संकट-ग्रस्त व्यक्ति की भी प्रार्थना यही होती है, कि हे देवी, मैं आप का हूँ, आप मेरा मार्गदर्शन कीजिए, मुझे इस संकट में से निकालिए। उस का दृढ़ विश्वास रहता है, कि देवी, चितिशक्ति उस को कठिन से कठिन परिस्थिति में से निकाल सकतीं हैं, और उस का यह विश्वास ढीला नहीं पड़ता। वह आत्महनन नहीं करता। वह अपने दैनंदिन कार्य, अपनी आराधना श्रद्धा-भक्ति और शरणागतिपूर्वक जारी रखता है। दुर्गम परिस्थिति में देवी का ऐसा स्मरण करनेपर, देवी अनुग्रह रूपसे उस व्यक्ति का भय हटातीं हैं, उस का आत्मबल बढ़ातीं हैं, और उसका उद्धार करतीं हैं।

भय दूर हो गया, मन शांत हो गया, चित्त समाहित हो गया, प्रसन्न हुआ, उस समय, ऐसे स्वस्थ चित्तसे यदि कोई भक्त देवी का स्मरण करे, नियमित रूप से उपासना करे, तो देवी, चितिशक्ति उस के मन की ओजस्विता बढ़ातीं हैं, और उसे शुभमति प्रदान करतीं हैं। ऐसी दिव्यसंपत्ति प्राप्त किए हुए भक्तों के मन में उदारता आती है, वे दूसरों का भी सुख चाहने लगते हैं। ऐसे लोगों ने पहले भी देवी के

अनुग्रह से अच्छे कार्य किए होते हैं। अब उन में समाज-हितकारी, उपादेय कार्य करने का नूतन स्फुरण होने लगता है, और वे भले, सृजनात्मक कार्यों में लग जाते हैं। अच्छे साधक अपने सारे कार्य, सेवा, ईश्वर को अर्पण करने की भावना से करते हैं।

आगे देवता कहते हैं, कि देवी के इलावा और कौन है, जो लोगों के दुःख, दरिद्रता और भय हरण कर सकता है। देवी ही एकमात्र शक्ति है, जिन में यह करने का सामर्थ्य है। कोई भी किसी भय से मुक्त होना चाहता हो, और देवी से प्रार्थना करे, तो उस का वह भय देवी हर लेतीं हैं।

देवी, चितिशक्ति ही सब की दरिद्रता, दुःख और भय को हटातीं हैं। यह कार्य देवी मातृवत् करतीं हैं। जैसे माँ अपने बालक का हित ही चाहते हुए यथोचित उस को दण्ड भी देती है, जगत्जननी भी वैसा ही करतीं हैं; व्यक्ति को दुःख, व्यथा और निराशा की परिस्थिति में भी डालतीं हैं। अच्छा साधक ऐसी परिस्थिति में उध्दरण की प्रार्थना करते हुए उपासना करता है। ऐसी श्रद्धा और सूक्ष्मता नियमित उपासना का परिणाम है। साधक प्रार्थना करता है अपने इष्टदेवता से। जप, ध्यान करता है अपने इष्टदेवता का। इष्टदेवता चाहे राम हो, कृष्ण हो या शिवजी, जागरण उनकी शक्ति का होता है, चितिशक्ति का। उपासना चितिशक्ति की ही होती है। संकट-ग्रस्त साधक को धीरे-धीरे चितिशक्ति की करुणा का अनुभव होने लगता है, और देवी चितिशक्ति उसे शुभमति प्रदान करतीं हैं, और उसे उस संकट में से निकालतीं हैं।

देवी, जो सर्वश्रेष्ठ - शक्ति हैं, चितिशक्ति हैं, वे सदा हर एक व्यक्ति पर सभी प्रकार के उपकार करने में आर्द्रचित्त हैं। देवी जगत् जननी हैं, जगदम्बा हैं, सबका पालन पोषण और उद्धार वे ही करतीं हैं। उनका वात्सल्य नैसर्गिक है। ऐसी माँ के होते हुए बालक को क्या चिंता? उच्च कोटि का भक्त जितना जप, जितनी सेवा, उपासना हो सके, सब देवी को अर्पण कर देता है। देवी, जो आर्द्रचित्त हैं, वे उस को बहुत अधिक मात्रा में फल देती हैं। हे देवी, आप को नमस्कार!

एभिर्हतैर्जगदुपैति सुखं तथैते
कुर्वन्तु नाम नरकाय चिराय पापम्।
संग्राममृत्युमधिगम्य दिवं प्रयान्तु
मत्वेति नूनमहितान् विनिहंसि देवि ॥१७॥

अब देवता पुनः युद्ध के प्रसंग को उठाते हैं।

यदि उन असुरों का केवल वध कर जगत को सुख प्राप्त कराना ही देवी का उद्देश्य होता, और वे सोचतीं कि असुर तो पापिन् हैं ही, उन्हों ने देवताओं को इतना त्रास दिया है , इतना आतंक मचाया है उन्होंने, तो ठीक ही है, कि मृत्यु के पश्चात् उन की आत्माएँ नरक में जाएँ और दुःख भोगें। तो देवताओं की प्रार्थना सुनकर, देवी, चितिशक्ति अपने सामर्थ्य से, वहीं बैठे-बैठे, बड़ी आसानी से उन असुरों को भस्म कर सकतीं थीं। परन्तु देवी ने ऐसा नहीं किया। उन्होंने असुरों को रणभूमि में संग्राम -मृत्यु दिलाई।

देवी ने उन असुरों का नाश तो करना ही था, क्योंकि जगत के सुख का यही एकमात्र उपाय था। असुरों ने बहुत पुरुषार्थ किया होता है, पर उन की कमज़ोरी यह होती है, कि वे भुक्ति केवल अपने लिए ही चाहते हैं; दूसरों के साथ उसे बाँटना नहीं चाहते। इस लिए, असंतृप्त होकर उन्हों ने देवताओं पर अत्याचार किया था। फिर भी, उन के पुरुषार्थ के कारण, उन का अगला जन्म तुच्छ योनि में तो नहीं होता। यदि देवी उन का दूर से ही नाश करतीं, तो उन के मन की उग्रता वैसी ही रह जाती, उन का नरकवास होता, अगला जन्म क्षुद्र होता, और ऐसा लगता जैसे कि उन की अवगति, अधोगति हुई हो। देवी ने उन की आत्माओं के लिए अच्छी गति चाही और इस शुभहेतु से रूप धारण किया, और उन असुरों को उन्हीं के स्वभाव के अनुसार युद्ध में लाकर उन का शिरच्छेदन किया। देवी का उद्देश्य था कि उनकी संग्राम - मृत्यु हो, और वे वीर गति को, स्वर्गलोक को प्राप्त हों। यह एक आधारभूत सिद्धान्त है, जिस को सहसा स्वीकारना आसान नहीं है। क्योंकि हम युद्ध नहीं, शांति चाहते हैं, यह उपदेश सहसा सब की समझ में नहीं आता। युद्ध-भूमि में एक प्रकार का जोश रहता है, जिस के कारण, जिस की युद्ध में मृत्यु होती है, उस की आत्मा को वीर-गति, स्वर्ग-प्राप्ति होती है। महाभारत के युद्ध में भी, पांडवों को भी, और कौरवों को भी स्वर्गप्राप्ति हुई। देवी असुरों के लिए इसलिए स्वर्ग प्राप्ति चाहती थीं , ताकि स्वर्ग में उन को सुख-भोग के कारण अतिशय संतोष हो, उन की शुद्धि हो, उन का स्वार्थ ढीला पड़े, मन स्थिर हो, संतुलित हो, और उन को यह समझ आए, कि भुक्ति से जो सुख प्राप्त होता है, वह अनित्य होता है, और फिर वे साधना और

मुक्ति के मार्ग को पकड़ें। जब असुरों में परिवर्तन लाने का और कोई उपाय नहीं था; तब देवी ने उन की उत्तरोत्तर प्रगति के लिए उस युद्ध की लीला रची। हे देवी, आपको नमस्कार!

दृष्ट्वैव किं न भवती प्रकरोति भस्म
सर्वासुरानरिषु यत्प्रहिणोषि शस्त्रम्।
लोकान् प्रयान्तु रिपवोऽपि हि शस्त्रपूता
इत्थं मतिर्भवति तेष्वपि तेऽतिसाध्वी ॥१८॥

इस श्लोक में देवता कहते हैं कि, हे देवी, आप दृष्टिमात्र से ही क्यों उन असुरों को भस्म नहीं कर देतीं? आप उन शत्रुओं पर शस्त्रों का प्रहार करती हैं। यह शस्त्रक्षेप इसलिए, क्योंकि आप का संकल्प रहता है, कि ये शत्रु आप के शस्त्रों द्वारा मारे जाने पर, अच्छे लोकों को प्राप्त हों। साध्वी होने के कारण आप उन की भलाई की ही मति रखतीं हैं।

देवी के शत्रु वे होते हैं, जो देवी को शत्रु मानते हैं। वे लोग, जो देवी की शक्ति को सहन नहीं कर सकते और उन को हटाना चाहते हैं। पर देवी के हृदय में ऐसे लोगों के प्रति भी कोई द्वेष नहीं होता! वे सब की भलाई चाहतीं हैं। क्योंकि वे उन असुरों का उद्धार चाहती थीं, इसलिए उन्होंने असुरों को दृष्टि मात्र से भस्मीभूत नहीं किया। इस के बदले उन्होंने शस्त्र,अस्त्र लेकर उन से युद्ध करवाया, ताकि देवी के दिव्य शस्त्रों से शस्त्रपूत होकर उन की आत्मा को अच्छी गति मिले, वे स्वर्गलोक को प्राप्त हों। देवी, चितिशक्ति अहित कार्य करनेवालों के प्रति भी शुभमति ही प्रकट करतीं हैं। हे देवी, आप को नमस्कार!

खड्गप्रभानिकरविस्फुरणैस्तथोग्रैः
शूलाग्रकान्तिनिवहेन दृशोऽसुराणाम्।
यन्नागता विलयमंशुमदिन्दुखण्ड-
योग्याननं तव विलोकयतां तदेतत् ॥१९॥

अब भगवती के आयुधों का वर्णन आता है। देवता कहते हैं कि आप के खड्ग के तेजपुञ्ज की चकाचौंधिक कौंध से, तथा आप के त्रिशूल के अग्रभाग की विपुल किरणों से उन असुरों की दृष्टि वहींपर विलीन नहीं हुई, इस का एक ही कारण यह है, कि उसी क्षण उन असुरों को आपके प्रसन्न, चंद्रमाकी किरणों-समान शीतल रश्मि-विकीर्णक, आनन्द -प्रदायक मुखारविंद का भी दर्शन हो रहा था।

देवी के हाथों में जो शस्त्र थे, उन का क्या तेज था! वे दिव्य अस्त्र थे, जिन की आंतरिक ज्योत रहती है। उनके खड्ग की धार और उनके त्रिशूल का अग्रभाग, दोनों, प्रकाश गिरने के कारण चमक रहे थे। उस चमक से प्रकट होनेवाली प्रभा के विस्फुरण से जो तेज किरण प्रसारित हो रहे थे, वे असहनीय थे। परन्तु, उन को देखकर भी असुरों की दृष्टि तत्क्षण इसलिए विलीन नहीं हुई, क्योंकि उन की आखों में वह चकाचौंधिक कौंध जैसे प्रवेश कर रही थी उसके साथ-साथ, उन को देवी का अत्यन्त प्रसन्न, स्वच्छ मुखमंडल भी दिख रहा था। भगवती के दिव्य मुखारविंद की शीतलता के कारण ही असुरों की दृष्टि सुरक्षित रही। हे देवी, एक ही रूप में हमें दिखता है वह तेज जो भस्म कर डाले, और वह माधुर्य भी, जो पुनर्जीवित करे। आप को नमस्कार!

दुर्वृत्तवृत्तशमनं तव देवि शीलं
रूपं तथैतदविचिन्त्यमतुल्यमन्यैः।
वीर्यं च हन्तृ हृतदेवपराक्रमाणां
वैरिष्वपि प्रकटितैव दया त्वयेत्थम् ॥२०॥

बुरे बर्ताव का, अशुभ व्यवहार का शमन करना भगवती का स्वभाव है। उन का स्वरूप मन के परे है, अचिन्त्य है। उन के स्वरूप की तुलना किसी से नहीं की जा सकती। उन के लावण्य और ऐश्वर्य की कोई उपमा नहीं मिलती।

स्वार्थ के कारण असुरों ने देवताओं को शत्रु माना। उन्हों ने देवताओं पर आक्रमण कर उन के ऐश्वर्य को अपने लिए हड़प लेने का प्रयत्न किया। उन्हों ने देवी को भी शत्रु माना, क्योंकि देवी ने उन्हें मनमानी नहीं करने दी। असुर रूप में ग्रस्त थे, अटके हुए थे, भुक्तिमें डूबे थे। देवी के अचिन्त्य, अतुल्य स्वरूप के महत्व की उन्हें कोई पहचान नहीं थी, वह उन के समझ के बाहर था। जब किसी भी प्रयास से असुरों में परिवर्तन आना सम्भव नहीं था, तब देवी ने युद्ध भूमि में उन का हनन किया। उन को संग्राम-मृत्यु दिलाकर, उन को सद्गति देकर देवी ने उन के प्रति अत्यंत दया प्रकट की। अत्याचारी असुर, जिन्हों ने देवी को शत्रु माना, उन के लिए भी भगवती के हृदय में असीम करुणा रही। हे देवी, आप को नमस्कार!

केनोपमा भवतु तेऽस्य पराक्रमस्य
रूपं च शत्रुभयकार्यतिहारि कुत्र।
चित्ते कृपा समरनिष्ठुरता च दृष्टा
त्वय्येव देवि वरदे भुवनत्रयेऽपि ॥२१॥

भगवती का स्वरूप अनुपम है। उस स्वरूप की किसी से कोई तुलना नहीं की जा सकती। उन के रूप को देख शत्रु अति भयभीत हो जाते हैं, और भक्त अति आनन्दित हो उठते हैं। वे अपने हृदय में अत्यंत कारुण्य रखते हुए भी, युद्ध में भयंकर निष्ठुरता प्रकट करतीं हैं। यह दिव्यता तीनों लोकों में एकमात्र भगवती में ही दिखने में आती है। कारुण्य और निष्ठुरता युगपत् एक ही रूपमें कहीं और दिखाई नहीं देते। साधक में शुद्धि लाने के लिए जो भी करना हो, उसे देवी पूरी तरह से करतीं हैं, परन्तु उन के हृदय में कोई राग-द्वेष नहीं रहता।

जब साधक साधना करने लगता है, तब पहले उस को भगवती की निष्ठुरता का ही अनुभव होता है; साधना में अच्छी तरह प्रवेश करने पर उस की जो साधना से सम्बन्धित, अपने आप से सम्बन्धित, ईश्वर से सम्बन्धित संकल्पनाएँ, प्रत्यय होते हैं, उन पर धीरे-धीरे प्रहार होने लगता है, फिर उन का विध्वंस होता है। इस अनुभव से साधक को बहुत पीड़ा होती है। उस की समझमें नहीं आता, कि उस के साथ यह हो क्या रहा है? उस के मन में ऐसे विचार आते हैं, कि मैं यह किस से सम्बन्ध जोड़ने चला हूँ ? यह तो भयानक शक्ति है। यदि वह इस स्तर से आगे बढ़े, तब वह पहचानता है कि उस की संकल्पनाएँ कितनी गलत थीं। अब उस को भगवती के चित्त में जो करुणा है, उस का अनुभव होने लगता है। उसका गलत तादात्म्य छूटने लगता है और उसे शांति और संतोष का अनुभव होता है। वह जान जाता है कि उस की गलत संकल्पनाओं के कारण वह जिन दुःखों को बटोरकर बैठा था, वे छूट गए, पर उस ने कुछ भी नहीं खोया। साधना की

शुरुआत में उसे पीड़ा अवश्य हुई थी, परन्तु अब वह अति प्रसन्न रहता है।

कार्य के क्षेत्र में भी ऐसे ही होता है। साधक पहले-पहले जब निर्णय लेता है, कि वह न्याय और इमानदारी जैसे सर्व-मान्य सिद्धान्तों के अनुसार ही व्यवहार करेगा, तब शुरुआत में उसे पीड़ा होती है। ऐसे लगता है, कि मन चाहे परिणाम नहीं आ रहे हैं, पर जैसे-जैसे उस की बुद्धि साधना के कारण तीक्ष्ण और तीव्र होने लगती है, और वह अपने सारे कार्य 'ईश्वरार्पणबुध्द्या' करने लगता है, वैसे-वैसे उसको संतोष और शांति का अनुभव होने लगता है।

साधना करते समय यह समझ में नहीं आता, कि देवी का अनुग्रह हो रहा है, या निग्रह। बस, यह सोचकर आगे बढ़ना होता है, कि हमारे अन्दर जो देव-अंश है, उस पर अनुग्रह हो रहा है, और हमारे अन्दर जो असुर-अंश है, उस पर निग्रह हो रहा है। अनुग्रह और निग्रह, दोनों को ऐसे ग्रहण करके, यह कहकर अपनी साधना को आगे बढ़ाना होता है, कि हे देवी, न तो मैं देव हूँ, और न मैं असुर हूँ, मैं तो केवल आप का हूँ। नहीं तो गति नहीं मिलती। हे देवी, वरदान देनेवाली आप हैं। आप को नमस्कार!

त्रैलोक्यमेतदखिलं रिपुनाशनेन
त्रातं त्वया समरमूर्धनि तेऽपि हत्वा।
नीता दिवं रिपुगणा भयमप्यपास्त-
मस्माकमुन्मदसुरारिभवं नमस्ते ॥२२॥

अब देवता कहते हैं कि, हे देवी, युद्ध के चरमकाल में आप के किए हुए रिपुनाश द्वारा, तीनों लोक संपूर्णतया सुरक्षित हैं। संग्राम-मृत्यु को प्राप्त होकर रिपुगण स्वर्ग लोक को प्रेषित हुए हैं। रिपुनाश कर आप ने हमारा भय, जो कि उन्मत्त असुरों के कारण उत्पन्न हुआ था, उसे दूर कर दिया है। आप को हमारा नमस्कार!

भगवती ने रिपुओं का नाश किया है, युद्ध समाप्त हुआ है। देवता भय-मुक्त हो गए हैं। उन को देवी के दिव्य दर्शन हो रहे हैं। वे संतोष का अनुभव कर रहे हैं, प्रफुल्ल-चित्त हैं, और कृतज्ञतापूर्वक देवी को पुनः पुनः नमस्कार कर रहे हैं!

शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके।
घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिः स्वनेन च ॥२३॥

इस श्लोक में देवता देवी से प्रार्थना करते हैं कि, हे देवी, आप आप के त्रिशूल से हमारी रक्षा करें। हे अम्बिके, आप खड्ग से हमारी रक्षा करें, तथा घण्टा ध्वनि से और धनुष की टंकार से भी हमारी रक्षा करें।

ऐसी प्रार्थना देवी कवच में भी आती है। अनेक प्रकार के संकट, और सूक्ष्म स्तर पर रहनेवाली अमंगलता भी हमारे लिए दुःख का कारण बन सकती हैं। इस श्लोक में देवताओं की देवी से प्रार्थना है, कि हर स्तर पर उन की रक्षा हो। त्रिशूल ऐसा शस्त्र है, जो रिपु की ओर फेंका जाता है। देवता कहते हैं कि, हे देवी, हमारे दूर के अनिष्ट रिपुओं, दुःखो और विघ्नों की ओर लक्ष्य कर, आप के त्रिशूल से आप उन का निवारण कीजिए, और हमारी रक्षा कीजिए। आप के

खड्ग से उन रिपुओं और संकटों का नाश कीजिए, जो हमारे पास आएँ हों। घण्टा-नाद से जो अमंगलता हमें छूती है उस को दूर कीजिए। आप के धनुष की टंकार से दूर की अमंगलता को डराईए, ताकि वह हमारे निकट न पहुँच पाए। इस प्रकार से हे देवी, आप के शस्त्रों से हमारे दुःखों का विध्वंस कीजिए।

यह श्लोक मंत्र होने के कारण, इस का बच्चों के रक्षण के लिए भी प्रयोग किया जाता है।

हे देवी, आप को नमस्कार!

प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके रक्ष दक्षिणे।
भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि ॥२४॥

इस श्लोक में भी देवता देवी से रक्षण की माँग कर रहे हैं। वे कहते हैं कि, हे चण्डिके, पूर्व, पश्चिम और दक्षिण दिशा में आप हमारी रक्षा कीजिए, तथा हे ईश्वरी, आप के त्रिशूल को घुमाकर आप उत्तर दिशा में भी हमारी रक्षा कीजिए।

जब हम जप करने बैठते हैं, तब आचमन और प्राणायाम करते हैं, फिर धीरे से, बैठे-बैठे हलका व्यायाम करने के बाद, रीढ़ की हड्डी सीधी कर, सीधे बैठकर, समाहित होकर भूतशुद्धि करते हैं। जप करते समय मन सूक्ष्म स्तरपर जाता है। इस लिए तब अशांति उत्पन्न करनेवाले कोई कारण नहीं होने चाहिए। कोई विक्षेप नहीं होना चाहिए। इस लिए जप एकान्त में करना होता है और जप आरम्भ करने से पहले आवरण करना होता है, दिग्बंधन करना होता है।

दिग्बंधन में हम मन में स्पष्ट रूप से हमारी चारों ओर अग्निरेखा देखते हैं, उस के अन्दर की ओर पानी की रेखा, और फिर उसके अन्दर की ओर वायु देखते हैं। ऐसा आवरण होता है। उस समय ऐसा विश्वास रखना होता है, कि कोई भी अमंगलता मुझे स्पर्श नहीं करेगी। इस का अभ्यास दृढ़ होने पर सुरक्षा का अनुभव होता है। साधक देवी से प्रार्थना भी करता है, कि हे देवी, यदि मेरे से यह दिग्बंधन ठीक तरह नहीं हुआ हो, तो जो आत्मत्रिशूल आप ने धारण किया है, उस से आप मेरा चारों दिशाओंसे रक्षण कीजिए। ऐसे पूर्ण सुरक्षित होकर जप करना होता है। देवी, चितिशक्ति हमारा रक्षण करतीं हैं। हे देवी, आप को नमस्कार!

सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते।
यानि चात्यर्थघोराणि तै रक्षास्मांस्तथा भुवम् ॥२५॥

आगे भी रक्षण की ही प्रार्थना है। देवता कहते हैं कि हे देवी, तीनो लोकोंमें आपके जो परम सुन्दर एवं अत्यन्त रौद्र, अत्यन्त घोर रूप हैं, ये सब रूप आपका ही आदेश पालन करते हैं। उनके द्वारा भी आप हमारी तथा भूलोक की रक्षा करें!

खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके।
करपल्लवसङ्गीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः ॥२६॥

रक्षण के लिए एक और प्रार्थना हो रही है। देवता कहते हैं कि हे देवी, आप के कर-पल्लवों में शोभा पानेवाले खड्ग, शूल और गदा आदि जो भी अस्त्र शस्त्र हों, उन सब के द्वारा आप सब ओर से हमारी रक्षा करें।

ऋषिरुवाच ॥२८॥

एवं स्तुता सुरैर्दिव्यैः कुसुमैर्नन्दनोद्भवैः।

अर्चिता जगतां धात्री तथा गन्धानुलेपनैः ॥२९॥

भक्त्या समस्तैस्त्रिदशैर्दिव्यैर्धूपैः सुधूपिता।

प्राह प्रसादसुमुखी समस्तान् प्रणतान् सुरान् ॥३०॥

देव्युवाच ॥३१॥

ब्रियतां त्रिदशाः सर्वे यदस्मत्तोऽभिवाञ्छितम् ॥३२॥

(ददाम्यहमतिप्रीत्या स्तवैरेभिः सुपूजिता।)

देवा ऊचुः ॥३३॥

भगवत्या कृतं सर्वं न किञ्चिदवशिष्यते।

यदयं निहतः शत्रुरस्माकं महिषासुरः ॥३४॥

यदि चापि वरो देयस्त्वयाऽस्माकं महेश्वरि।

संस्मृता संस्मृता त्वं नो हिंसेथाः परमापदः ॥३५॥

यश्च मर्त्यः स्तवैरेभिस्त्वां स्तोष्यत्यमलानने।

तस्य वित्तर्द्धिविभवैर्धनदारादिसम्पदाम् ॥३६॥

वृद्धयेऽस्मत्प्रसन्ना त्वं भवेथाः सर्वदाम्बिके ॥३७॥

ऋषिरुवाच ॥३८॥

इति प्रसादिता देवैर्जगतोऽर्थे तथात्मनः।
तथेत्युक्त्वा भद्रकाली बभूवान्तर्हिता नृप ॥३९॥

देवताओं ने भगवती को संतुष्ट करने के लिए उन की इस तरह स्तुति की। देवी ने संतुष्ट होकर अपने उन भक्तों को बताया, कि तुम जो चाहते हो, वह माँगो, और वह तुम को प्रदान किया जाएगा। उस समय महिषासुर का वध हो चुका था, युद्ध समाप्त हो गया था, और देवताओं को देवी के दिव्य दर्शन हो रहे थे। देवी के यह मधुर वचन सुनने पर देवताओं ने पहले उद्गार प्रकट किया, और फिर भक्तिपूर्वक कहा कि, हे महेश्वरी, यदि हमने आपसे वर पाना ही है, तो आप कृपा कर ऐसा सम्भव करें, कि जब भी हम आपका अच्छी तरह से स्मरण करें, तब आप हमारे संकटों का निवारण करें, और हे अम्बिके, जब भी कोई मनुष्य इस स्तुति द्वारा आपकी प्रशंसा करे, आप उसपर भी वैसे ही अनुग्रह करें जैसे आपने हमपर किया है। संतुष्ट भद्रकाली 'ऐसा ही हो' कहकर लुप्त हो गईं।

देवताओंने अपने और जगत् के रक्षण के लिए भगवतीसे ऐसी प्रार्थना की। यह प्रार्थना हमने अच्छे साधकों के जीवन में सिद्ध होते देखी है, जब वे भक्तिपूर्वक, श्रद्धापूर्वक, सर्वतोभावेण समर्पित होकर देवी के शरण में जाते हैं, देवी की स्तुति करते हैं, तब वह गुरुशक्ति उनकी प्रार्थना सुनती ही है। हे देवी आप को पुनः पुनः नमस्कार!

॥ ॐ नमः पार्वती पतये हर हर महादेव ॥

पूर्णकलामयि

पूर्णकलामयि संवित्स्वरूपिणी
समरसशालिनि बोधय माम्
(बोधय मां प्रतिबोधय माम्
पालय मां परिपालय माम्) ॥ध्रुवपद॥

गुरुमूर्ते त्वां नमामि सततम्
आत्मकाम संवर्धनि अम्ब ॥१॥

जगदोद्याने मृगसदृशं मां
साधनविमुखं मोचय जननि।
प्रणवधनुषि संयोजय चित्तम्
परम लक्ष्य - तन्मयतां प्रापय ॥२॥

CDs

Antarangini - I - CD 150.00
Antarangini - II - CD 150.00
Antarangini - III - CD 150.00
Dhyana Praveshika - (CD) - English 75.00
Dhyana Praveshika - (CD) - Konkani 75.00
Navaratra Nityapath(CD) 100.00
SCM - Nitya Nema (2 CD) 150.00
Stotravali - I CD 100.00
Stotravali - II CD 100.00

VCDs

Chaturmas Series -

1. Kodial-2002 (Set of 15 ..... Rs. 1,500.00
2. Vithal:
   i. Vyasa Pooja – 2 Vol ..... Rs. 150.00
   ii. Swadhyaya Set – set of 9 ..... Rs. 700.00
   iii. Vichitra Panchakam ..... Rs. 75.00
   iv. Seemollanghana ..... Rs. 75.00

Bharatiya Vidya Bhavan Series

2003 Awakening in Hinduism ..... Rs. 150.00
2004 Four Steps to Sharanagati ..... Rs. 100.00

Available at the Math and at Swamji's official camps:

1. Pooja/Japa Materials
   Rudraksha Mala (108+1 beads) Rs.300.00
   Gomukh ..... Rs. 15.00
   Mundu ..... Rs. 70.00
   Uparne ..... Rs. 70.00
   Vibhuti (Bhasma) - 125 grm ..... Rs. 15.00
2. Photographs
3. Vanity / sling Bags of various shapes and sizes, pillow covers, Asanas, Gomukhs and other articles produced by 'Srivali Samvit Sudha – Shirali'

Chitrapur Math Publications Division
Shri Chitrapur Math,
Shirali
Uttara Kannada - 581 354

for more information visit www.chitrapur.net

List of Books available as of 24th April 2005

BOOKS :

Anand Bodhamrat - I Devnagari	10.00
Anand Bodhamrat - II English	10.00
Anugraha (II edition)	300.00
Atha Devatarchan Vidhi - Devnagari	10.00
Brief History of SCM	10.00
Call of Shri Chitrapur Math	25.00
Gurucharitra Saramrit(Marballi)	50.00
Guruparampara Charitra (Aroor)	200.00
Manache Shloka	20.00
Navaratra Nitya Path	50.00
Nitya Devatarchana Vidhi - Kannada	10.00
Nitya Patha - (Kannada)	15.00
Nitya Patha - D - New	20.00
Nitya Patha - old + suppliment (D)	20.00
Om Namo Jyana Deepaya - (Devnagari)	10.00
Om Namo Jyana Deepaya - (Kannada)	10.00
Parijnana Bodhamrit	40.00
Rathotsava - Kannada	20.00
Sadhakanche Manogat	25.00
Sadyojat Swadhyaya Sudha	50.00
Sandhya Vandana - English	20.00
Samvit Sankeertan Saar (Kannada)	50.00
Sartha Mantra Pushpanjali.(D)	10.00
Sartha Mantra Pushpanjali - (K)	15.00
Stuti Manjari (Devnagri, APRIL 2004)	80.00
Stuti Manjari (Kannada AUG 2004)	80.00
Tamaso Maa Jyotirgamaya	10.00

CASSETTES

Ashtakastotravali	50.00
Antarangini - I - Casset	50.00
Antarangini - II Casset	50.00
Antarangini - III - Casset	50.00
Devi Poojan - Casset	50.00
Dhyana Praveshika - English - Casset	50.00
Dhyana Praveshika - Konkani - Casset	50.00
Laghu Sandhya Vandan - Casset	50.00
Navaratra Nityapath - Casset	50.00
SCM - Nitya Nema (set of 2 casset)	100.00
Shiva Poojan - Casset	50.00
Stotravali - I Casset	50.00
Stotravali - II Casset	50.00

॥ चक्षुर्नो धेहि चक्षुषे चक्षुर्विख्यै तनूभ्यः सं चेदं वि च पश्येम ॥

॥ श्री चित्रापुर मठः श्रीवल्ली ॥